ऋषियों का संदेश ।

सूचीपत्र।

प्रथम अध्याय।

नाम और निवास।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
ग्रन्थाभिप्राय	१	आर्य्य और अर्य्य	५
हिन्दुनाम	१	हिन्दु आर्य्य और अन्यान्य आर्य्य	५
हिन्दु नाम की उत्पत्ति	२	आदि निवास	७
वर्त्तमान हिन्दुस्थान	४	आर्य्य शब्द का अर्थ	१०
आर्य्यावर्त्त	४		

द्वितीय अध्याय।

सभ्यता।

आपेक्षिकी शब्द विद्या	१२	खेती बारी	१६
उन शब्दों का उत्पत्ति स्थान	१२	शिल्प	१८
उन शब्दों का आशय	१३	पशु	१९
मूल आर्य्य भाषा	१३	मात्र	१९
परिवार	१४	महीने और चांद की गिन्ती	१९
वास	१५	राज्य शासन	२०

तृतीय अध्याय।

धर्म्म।

एकसां देवता और एकसां संस्कार	२१	अग्नि	४४
आकाश और पृथिवी	२१	सोम	४५
सूर्य्य	३६	क्या वे मूर्त्तिपूजक थे	४६
ऊषा	४२	क्या वे एकेश्वरवादी थे	४८
वायु	४४	उन के धर्म्म का नाम	४७
		उन के धर्म्म संबंधीय रीति	४९

चतुर्थ अध्याय ।

हिन्दु और पार्सी ।

ऐक्य	५०	अनैक्य का परिणाम	६२
अनैक्य	५४	सप्तसिंधु	६५
विरुद्धता का कारण	५८		

पंचम अध्याय ।

ढूंढढांढ़ ।

पूर्व्व ऋषि और नूतन ऋषि	७२	सरमा और बल की कहानी	८३
कास्पियान सागर	७३	शंका और जिद्द	८६
वृत्र की कहानी	७८	ढूंढढांढ़ का फल	८६
वृत्र के मित्र	८१		

इस पुस्तक के लिखने में निम्नलिखित पुस्तकों की विशेष सहायता लिई गई ।

ऋग्वेद संहिता मूल और बाबू रमेशचन्द्रदत्त कृत बंगानुबाद टीका समेत ।

भारतवर्षीय उपासक संप्रदाय-प्रथम भाग का उपक्रमणिका बाबू अक्षय कुमारदत्त कृत ।

The Arian Witness—By the Rev. K. M. Bannerjee, D. L.

The Parsi Religion—By the Rev. John Wilson, D. D., M. R. A. S.

कई एक यूनानी लातिनी जर्मन और अंगरेजी कोष ।

ऋषियों का स्वदेश ।

प्रथम अध्याय ।

नाम और निवास ।

ग्रन्थाभिप्राय—कितने एक पुरुष कहते हैं कि हिन्दु जाति का इतिहास नहीं । परन्तु किसी सभ्य जाति के विषय में ऐसा कहना कहां तक उचित है हम कह नहीं सकते हैं । हिन्दु ऋषियों में यद्यपि हेरोदोतस की नाईं कोई शृङ्खलाबद्ध इतिहास लेखक उत्पन्न नहीं हुए तथापि उन की रचना जो हम तक नहीं पहुंच गई उन से और उन के स्वसंपर्कीय अन्यान्य जातियों के प्राचीन लेखों से उन का इतिहास जान लेना असंभव नहीं है । वर्त्तमानकाल के विद्वानों ने बहुत छानबीन करके हमारे पितृगण के विषय में बहुत कुछ अनुसंधान किया । हम पक्षपात छोड़कर उन अनुसंधानों की सहायता से प्राचीन ऋषियों के स्वदेश के विषय में इस क्षुद्र पुस्तिका में किञ्चित वर्णन करना चाहते हैं । आशा है कि सज्जन पढ़नेवाले अपक्षपात चित्त से इस को पढ़ेंगे और सत्य को ग्रहण पूर्वक ग्रन्थकर्त्ता को धन्य और कृतार्थ करेंगे ।

हिन्दुनाम—हम हिन्दु नाम से अपना अनुसंधान आरंभ करते हैं । जहां तक विद्वानों ने खोजखाज किई

उस से जान पड़ता है कि वेद, स्मृति, दर्शन, रामायणादि प्राचीन संस्कृत पुस्तकों में हिन्दु शब्द दृष्टि नहीं होता है। यदि हमारे पुरखे अपने तईं हिन्दु कहते होते तो अपने प्राचीन ग्रंथों में यह शब्द कहीं न कहीं लिख ही डालते। सो पुरानी हिन्दु पुस्तकों में हिन्दु शब्द के न मिलने से विद्वानों ने सिद्धान्त किया कि हिन्दु का हिन्दु नाम किसी और जाति ने रक्खा होगा।

पार्सियों के धर्म्मशास्त्र का नाम आवस्ता है। यह पुस्तक ज़न्द भाषा में लिखी हुई है। इस लिये इसे ज़न्द आवस्ता कहते हैं। ज़न्द आवस्ता में "हेन्दु" नामक एक शब्द देखने में आता है। फारस देश में एक प्रकार के पुराने लेख मिले हैं जिन के अक्षरों का आकार कीला वा मेख़ की नाईं है। उन कीलाकार लेखों (Cuniform inscriptions) में "हिदुस" नामक एक शब्द मिलता है। विद्वानों का मत है कि यह हिदुस शब्द हेन्दु शब्द का रूपान्तर है। अब स्पष्ट प्रतीति होता है कि हिन्दु शब्द और हेन्दु या हिदुस शब्द में विशेष भेद नहीं है। सो हमारे बापदादों को हिन्दु नाम कहां से मिल गया। हम जान सकते हैं अर्थात् पहिले पार्सियों से और पश्चात अन्यान्य जातियों से उन को यह नाम प्राप्त हुआ है।

हिन्दु नाम की उत्पत्ति—विद्वानों का विचार है कि ऋग्वेदसंहिता हिन्दु जाति का सब से प्राचीन ग्रन्थ है। ऋग्वेद के कई स्थान पर "सप्तसिन्धु" का प्रसंग है।

संस्कृत में सिंधु शब्द का साधारण अर्थ समुद्र है। परन्तु किसी किसी कोष में सिंधु शब्द का अर्थ नदी भी देखने में आता है (देखो मेदिनी कोष)। सो सप्तसिन्धु का अर्थ सात समुद्र भी हो सकता सात नदी भी हो सक्ता है। ऋग्वेद में जिस भांति इस शब्द का व्यवहार हुआ उस से अनुमान होता है कि सप्तसिन्धु किसी भूखंडका नाम था जिस में सात नदियां बहती थीं।

पार्सियों के सब से बड़े देवता का नाम अहुर मज़्द है। ज़न्द आवस्ता में लिखा है कि आदि में अहुर मज़्द देवता ने सोलह भूखंड सिरजे जिन में से एक का नाम "हप्तहेन्दु" था। संस्कृत "सप्तसिन्धु" और ज़न्द "हप्त-हेन्दु" एक ही शब्द बोध होता है केवल भाषा भेद से स ह से वा ह स से बदल गया। संभवतः इसी हप्त-हेन्दु के बसनेहारे होने से हमारे पुरुखे हिन्दु नाम से प्रसिद्ध किये गये।

किसी किसी का विचार है कि हिन्दु शब्द का एक अर्थ काला है और शत्रुतापूर्वक पार्सियों ने हमारे बाप-दादों को हिन्दु अर्थात "काले आदमी" कहा। परन्तु इस शब्द के व्यवहार पर सोच बिचार करने से ऐसे अनु-मान करने का प्रयोजन नहीं है। क्योंकि साधारण लोग समुद्र को "काला पानी" कहते हैं और इस का कारण यह है कि उन को समुद्र का पानी काला दिखाई देता है। सो यद्यपि हिन्दु शब्द का अर्थ काला भी मान लिया जावे तौभी ऐसा बिचार करना होगा कि समुद्र के पानी की रंगत के निमित्त इस शब्द का व्यव-हार पहिले समुद्रार्थ और फिर नद्यर्थ हुआ होगा

और अन्त में नदीवाले देशवासियों को भी यही नाम दिया गया होगा।

बहुत से विद्वानों का विचार है कि ये सात नदी सिन्धु सरस्वती और पंजाब देश की पांच नदियां हैं। इन्हीं नदियों के तट पर हमारे पुरखे पहिले पहल आ बसे।

यूनानियों ने हिन्दु जाति को "इंडय" नाम से प्रख्यात किया। संभवतः यह शब्द ज़न्द हेन्दु शब्द ही का रूपान्तर है और यूनानियों ने हिन्दु जाति का यह नाम पार्सियों ही से प्राप्त किया होगा।

वर्त्तमान हिन्दुस्थान—यूनानी इंडय शब्दानुसार अंगरेज हमारे वर्त्तमान वासस्थान को इंडिया कहते हैं। मुहम्मदी फारसी या ज़न्द हेन्दु शब्दानुसार इस देश को हिन्दुस्तान कहते हैं। (संस्कृत स्थान—फारसी स्ताना) पौराणिक कथानुसार इस देश का नाम भारतवर्ष है। उन के विचार में पृथिवी एक द्वीप या टापू की नाईं है जिस को जंबूद्वीप कहते हैं। किसी समय जंबूद्वीप को नव खंडों में बिभाग कर एक खंड भरत नामक राजा को दिया गया था इस कारण भरत का भाग भारतवर्ष वा भारतखंड नाम से विख्यात हुआ।

आर्य्यावर्त्त—परन्तु मनुजी ने अपने निवासस्थान को आर्य्यावर्त्त नाम से प्रसिद्ध किया।

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्यारार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः॥

मनुसंहिता अध्याय २। श्लोक २२।

अर्थ—पूर्व और पश्चिम में समुद्र और उत्तर में हिमालय और दक्षिण में बिंध्याचल इन सीमाओं की मध्यवर्त्ती भूमि को पंडितगण आर्य्यावर्त्त कहते हैं।

इस बर्णनानुसार मनुजी का आर्य्यावर्त्त उत्तर भारत है। सो जिस समय मनुसंहिता रचा गया हमारे पितृगण उत्तर भारत में बास करते थे और वे दक्षिण के विषय में बहुत जानकार न थे। इस से यह भी अनुमान किया जाता है कि वे पहिले पहल उत्तर पश्चिम दिशा में सप्त नदी के तीरों पर अवस्थित हुए और वहां से क्रमशः, पूरब की ओर आगे बढ़कर गंगा तटस्थ प्रदेशों में फैलते गये। इस के बहुकाल पश्चात उन्हों ने दक्षिण का अधिकार किया और आप वहां के बसनेहारे भी हुए।

आर्य्य और अर्य्य—न तो मनुजी ने और न किसी और ऋषि ने अपनी जाति को हिन्दु नाम से प्रख्यात किया। परजातीय लोग उन को हिन्दु तो कहते थे परन्तु वे आप अपने तईं आर्य्य नाम से प्रसिद्ध करते थे। ऋग्वेद के कई एक स्थलों में आर्य्य शब्द के स्थान आर्य्य शब्द देखने में आता है। यह अर्य्य शब्द ज़न्द ऐर्य्य शब्द का सदृश है।

हिन्दु आर्य्य और अन्यान्य आर्य्य—यद्यपि हिन्दु लोग अपने को अन्यान्य जातियों से पृथक् और मान्यमान समझते हैं तथापि उन के आर्य्य नाम से स्पष्ट प्रगट होता है कि न वे अकेले एक पृथक् जाति हैं और न औरों से अधिक पवित्र और मान्यमान ही हैं। क्योंकि वे उसी मूल आर्य्य बंश से निर्गत हुए जिस से पार्सी

माद्री, यूनानी, रोमीय, जर्मन, अंगरेज, रूस, फ्रांसीसी इत्यादि जातिगण निर्गत होके भिन्न २ देशों में फैल गईं और जगत के इतिहास में बल और विक्रम में प्रसिद्ध हुईं। सो इन जातियों से किसी प्रकार की छूतछात करना वा घृणा द्वेष रखना हिन्दु जाति के लिये अत्यन्त अनुचित है।

विद्वानों ने निम्नलिखित जातियों में आर्य्य शब्द को या तो मूल या उस के सदृश रूप में देखकर उन को आर्य्य सिद्धान्त किया।

१. पार्सी—पार्सी लोग अपने आप को ऐर्य्य कहते थे। जन्द आवस्ता में उन के अधिकार भूक्त देशों को ऐर्य्या कहा है। पार्सियों के आदि बासस्थान का नाम इरान है। कोई कोई विद्वान अनुमान करते हैं कि इरान शब्द ऐर्य्य शब्द ही को विकृति है। कोई कोई कीलाकार लेखों में देखने में आता है कि इरान देश के पार्सी बादशाहों में से कितनों ने अपने तई इरान और अनिरान अर्थात आर्य्य और अनार्य्य दोनों जातियों के बादशाह कहा है। किसी लेख में उन के प्रधान देवता अहुर मज़्द को ऐर्य्यों का देवता बताया। कोई कोई यूनानी ग्रन्थकर्त्ताओं ने पार्सी अधिकारस्थ देशों को एकत्र एरियाना कहा और कितने एक पार्सी बादशाहों के नाम के साथ "अरिया" पदवी जोड़ दिई। यों दारा बादशाह के परदादे का नाम अरिया राम्न बताया गया। ईरान देश में एक प्रकार के कीलाकार लेख मिले हैं जिन की भाषा संस्कृत भाषा के सदृश है। उन

लेखों में दारा बादशाह के नाम के साथ ऐर्य्य और ऐर्य्य-चित्र (अर्थात आर्य्य और आर्य्य-बंशीय) यह दो विशेषण देखने में आते हैं।

२ मादी—प्रसिद्ध यूनानी इतिहास लेखक हेरोदोत्स ने मिदिया देशबासियों को आरिआई और मादियों की एक शाखा को अरिज़न्ति अर्थात आर्य्यबंश कहा है।

३. आर्मानी—इस जाति की भाषा में अरि शब्द पाया जाता है जिस से इस जाति का नाम आर्मानी हुआ।

४. आयरन्—ककेसस पर्बत के नीचान में कितने एक आर्य्यबंशीय लोग मिलते हैं जिन का जातीय नाम आयरन है।

५. यूनान की उत्तरी भूमि को थरेस कहते हैं जिस का पुराना नाम आरिया था।

६. जर्मन—इस भाषा में आरिआई शब्द मिलता है।

७. आयर्लैंड—इस टापू के निवासी केल्ट जाति का प्राचीन नाम एर या एरि था। यह लोग पुरानी नर्स भाषा में ईरार और एंग्लोसेक्सन भाषा में इरा कहलाते थे। इन्हीं नामों के कारण इस टापू का नाम आयर्लैंड भी हुआ।

आदि निवास—विद्वानों का बिचार है कि आर्य्य जाति का आदि निवास मध्य एशिया में था। इस विषय में निम्नलिखित प्रमाण सोचने के योग्य हैं।

१. प्रवाद है कि एशिया से लोगों ने जाकर यूरप में बास किया।

२. यूनानी और रोमियों के विषय में इतिहास के जाननेवाले अनुमान करते हैं कि उन के पुरखों ने पूर्वोत्तर दिशा से जाकर यूनान और इटली में वास किया।

३. हिन्दु जाति का सब से प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद के पढ़ने से प्रतीत होता है कि वैदिक ऋषि इस देश में पहिले पहल पश्चिमोत्तर दिशा अर्थात् पञ्जाब में अवस्थित हुए। वहां से धीरे धीरे पूर्व की ओर बढ़ते गये। उन की इस पूर्वमुखी गति से ऐसा जान पड़ता है कि उन्हों ने हिन्दुकुश पर्वत उत्तीर्ण होकर ही इस देश में प्रवेश किया था। फिर ऋग्वेद में दक्षिण दिशा के किसी स्थान का वर्णन नहीं। परन्तु हिमालय पर्वत के उत्तर और पश्चिम दिशा का स्पष्ट प्रसंग है। सो उन का उत्तर पश्चिम से भारतखंड में आना ही संभव है।

४. हिन्दु लोग हिमालय की उत्तरी दिशा को परंपरा से परमपवित्र मानते आये हैं। अपने पवित्र पर्वत सुमेरु और कैलास को उसी ओर बताते हैं। उत्तराखंड को देवभूमि और तपस्या का मुख्य स्थान समझते हैं और कहते हैं कि पांडवों ने इसी मार्ग से स्वर्गारोहण किया। जब उत्तराखंड का ऐसा माहात्म्य मानते और ऐसी मर्य्यादा करते हैं तो निश्चय बोध होता है कि उन के पुरखे इसी दिशा से इस देश में आये।

५. कौषीतकी ब्राह्मण के एक स्थल में लिखा है कि लोग भाषा सीखने के लिये उत्तर दिशा को जाते थे।

पथ्यास्वस्तिरुदीचिं दिशं प्राजानाद् वाग् वै पथ्यास्वस्तिस्तस्माद् उदीच्यां दिशि प्रज्ञाततरा वागुद्यते। उदञ्च उ एव यन्ति वाचं शिक्षितुम्। यो वा तत आगच्छति तस्य वा शुश्रूषंते इति स्माह। एषा हि वाचो दिक् प्रज्ञाता। कौषीतकी ब्राह्मण ७।६।

अर्थ—पथ्यास्वस्ति उत्तर दिशा के विषय में जानकार था। वाचा ही पथ्यास्वस्ति है। इस कारण कहते हैं कि वाचा उत्तर दिशा ही में अधिकतर प्रज्ञात है। लोग भी उत्तर में वाचा सीखने को जाते हैं और ऐसा कहते हैं कि जो वहां से आता है लोग उसी को सुनना चाहते हैं। क्योंकि लोग कहते हैं कि वही वाचा का दिशा प्रज्ञात है।

इस बर्णन से भी जान पड़ता है कि उत्तर ही में उन का पहिला बासस्थान था।

६. पार्सियों के आवस्ताशास्त्रान्तर्गत वन्दिदाद नामक पर्ब्ब के सृष्टि प्रकरण में कितने एक देश का बर्णन है जिन में से ऐर्य्योनावएजो प्रथम देश माना गया। (जन्द वएजो—संस्कृत बीज।) ऐर्य्योना वएजो का अर्थ आर्य्य बीज। इस अर्थ पर बिचार करने से बोध होता है कि समस्त आर्य्यजाति एक मूल देश से निर्गत हुई हैं जिसे पश्चात आर्य्यबीज कहा गया होगा। ऐर्य्योनावएजो के बर्णन से ज्ञात होता है कि वहां शीत ऋतु दश महीने और ग्रीष्म ऋतु केवल दो महीने होती थी। ऐसा शीत-प्रधान स्थान मध्य एशियास्थ कोई पार्वत्य स्थान होना ही संभव है। आर्य्य जाति की

भिन्न भिन्न भाषाओं में जिस प्रकार शीत और बसंतऋतु के एक दृश्य नाम पाये जाते हैं और किसी ऋतु के इस प्रकार एक दृश्य नाम नहीं पाये जाते हैं। जिस से निश्चय होता है कि उन का मूल बासस्थान किसी शीत प्रधान देश ही में होगा।

इन बातों पर सोच बिचार कर कुछ विद्वानों ने अनुमान किया कि यह स्थान बेलुर्ताग और मुस्ताग पर्वतों के पश्चिम में और आमू नदी के उद्गमस्थान के निकटस्थ ऊंची भूमि पर होगा जहां बर्फ भी जमता है।

आर्य्य शब्द का अर्थ--१. साधारण संस्कृत में आर्य्य शब्द का अर्थ श्रेष्ठ वा मान्य है। परन्तु कई एक कारणों से बोध होता है कि यह अर्थ आर्य्य शब्द का आदि और मूल अर्थ नहीं है।

२. संस्कृत ऋ धातु से आर्य्य शब्द निर्गत हुआ है। ऋ धातु का अर्थ भूमि कर्षण अर्थात् खेती करना है। सो आर्य्य शब्द का मूल अर्थ किसान है। ऐसा बोध होता है कि इस नाम से मध्य एशिया में उन के और उन के पड़ोसी गड़ेरियों में भेद किया जाता था।

३. यूनानी लातिनी, एंगलोसेक्सन, अंगरेजी, रूसी, आयरिश, कार्निश, वेल्श, प्राचीन नर्स, लिथुएनिक इत्यादि अनेकानेक यूरपीय भाषाओं में हल और खेतीबारी के लिये कितने एक शब्द व्यवहार किये गये जो "अर्" धातु से निर्गत हुए हैं। यूरपीय अर् धातु और संस्कृत ऋ धातु दोनों का एक ही अर्थ है।

४. ऋग्वेद के पढ़ने से ज्ञात होता है कि वैदिक समय के ऋषि अपने तईं आर्य्य और इस देश के प्राचीन निवासियों को घृणा से दस्यु कहते थे जिन के साथ उन का सदा युद्ध विग्रह लगा रहता था। इस दस्यु शब्द के बिरुद्ध में जब आर्य्य शब्द का व्यवहार होने लगा तो उस का अर्थ बदल गया और आर्य्य शब्द संभ्रम बोधक बन गया। आवस्ता में भी ऐर्य्य शब्द मान्य और साधारण दोनों प्रकार लोगों के लिये प्रयुक्त हुआ है।

द्वितीय अध्याय ।

सभ्यता ।

आपेक्षिकी शब्द विद्या—जिस विद्या की सहायता से विद्वानों ने मध्य एशियास्थ मूल आर्य्य जाति की सभ्यता का पता लगाया उस विद्या को आपेक्षिकी शब्द-विद्या (Comparative Philology) कहते हैं। उन्हों ने देखा कि बहुत से ऐसे शब्द हैं जो कितनी एक भाषाओं में एकसां दृष्ट होते हैं। अर्थात् उन का आकार उच्चारण और धातु प्रायः एक ही रूप है। जैसे पिता के लिये संस्कृत पितृ, जन्द पैतर, फारसी पिदर, यूनानी पातेर, लातिनी पेतर, जर्मन भतेर, गथिक फडर, आइसलैंडिक फढिर, सुइडिश और डेनिश फडेर, डच भडेर, एंगलो-सेक्सन फडिर, अंगरेजी फदर।

आपेक्षिकी शब्द विद्या से दो विशेष बातें जान पड़ती हैं। (१) उन शब्दों का उत्पत्ति स्थान (२) उन शब्दों का आशय।

उन शब्दों का उत्पत्ति स्थान—१ जिन जिन भाषाओं में वे एकसां शब्द देखने में आते हैं उन उन भाषाओं में वे एकसां शब्द आप से आप उत्पन्न नहीं हुए। क्योंकि एक ही शब्द के भिन्न भिन्न भाषाओं में आप से आप एकसां उत्पन्न होना असंभव है। सो उन एकसां शब्दों का कोई न कोई आदि उत्पत्ति स्थान होगा। उस मूल उत्पत्ति स्थान से भिन्न भिन्न देशों की भिन्न भिन्न अवस्थाओं में अवस्थित होने से उन के आकार में कुछ न कुछ

भेद तो आ गया परन्तु उन की सादृश्य जाती न रही।

२ इस नियमानुसार जिन जिन भाषाओं में ये एक सां शब्द पाये जाते हैं उन भाषाओं के प्रत्येक के मूल भाषा भी नहीं कह सकते हैं। सो ये पृथक् २ भाषायें एक विशेष मूल भाषा से उत्पन्न हुई हैं और उसी मूल भाषा में पूर्वोक्त एकसां शब्द भी प्रचलित थे।

उन शब्दों का आशय—शब्दमात्र ही किसी न किसी पदार्थ का बोधक होता है। उस पदार्थ को उस शब्द का आशय कहना चाहिये जैसे पितृ शब्द पिता का बोधक वा वाचक है और पिता पितृ शब्द का आशय है। यदि पिता को पिता न कहा जाय तो पितृ शब्द का प्रयोग निरर्थक होगा। जहां बिवाह शब्द प्रचलित है वहां बिवाह की रीति भी प्रचलित होगी नहीं तो बिवाह शब्द निरर्थक होगा। सो शब्द को देखकर शब्द का आशय ज्ञात होता है।

इस नियमानुसार पूर्वोक्त एकसां शब्दों से जो सभ्यता सम्बन्धीय आचार व्यवहार और नाना प्रकार की और बातें प्रगट होती हैं वे उस मूल भाषा के बोलने-वालों में प्रचलित थीं जिस मूल भाषा से ये एकसां शब्द निकले हैं और यह भी जान पड़ता है कि उस मूल भाषा के बोलनेवालों के सन्तानगण केवल मात्र उन एकसां शब्दों ही को नहीं बरन् उन शब्दों के आशय सभ्यता सम्बन्धीय आचार व्यवहारादि भी अपने साथ लेकर भिन्न भिन्न देशों में जा बसे हैं।

मूल आर्य्य भाषा—आर्य्य जाति की भिन्न २ शाखाओं

में जो एकसां शब्द दृष्टि होते हैं पूर्वोक्त नियमानुसार वे निश्चय किसी मूल आर्य्य भाषा में प्रचलित थे। वह मूल आर्य्य भाषा आर्य्य जाति के आदि निवास मध्य एशिया ही में बोली जाती थी। सो इन्हीं एकसां शब्दों पर सोच बिचार करने से आदि निवासस्थ आर्य्य सभ्यता का पता लग सकता है। इस विषय में विद्वानों ने जहां तक ढूंढ़ ढांढ़ किया हम संक्षेप से नीचे बर्णन करते हैं।

परिवार—मध्य एशियास्थ आदि निवास में प्राचीन आर्य्य परिवारबद्ध होके बास करते थे क्योंकि आर्य्य जाति की भिन्न भिन्न शाखाओं की भाषाओं में पिता, माता, पुत्र, कन्या, भाई, बहिन, चचा, दुहता, दुहती इत्यादि पारिवारिक सम्बन्ध बाचक शब्द और ससुर, सास, देवर, जमाई इत्यादि बिवाह सम्बन्ध बोधक शब्द एकसां दृष्टि होते हैं। जैसे :—

पिता के लिये संस्कृत पितृ, ज़न्द पैतर, फ़ारसी पिदर, यनानी पातेर, लातिनी पेतर, जर्मन भतेर, गथिक फेडर, आइसलेंडिक फढिर, सुइडिस और डेनिस फडेर, डच भडेर, एंगलोसेक्सन फडिर, अंगरेजी फदर। माता के लिये संस्कृत मातृ, फारसी मादर, यूनानी मेतेर, लातिनी मातेर, एंग्लोसेक्सन डेनिश और सुइडिस मोदर, आइसलेंडिक मोधिर, जर्मन मुतेर, अंगरेजी मदर। कन्या के लिये संस्कृत दुहितृ, ज़न्द दुघधर फारसी दुख़तर, यूनानी थुगातेर, जर्मन तखतेर, गथिक डौहटर, डेनिश और सुइडिश डटर, एंग्लोसेक्सन डहटर, अंगरेजी डटर। (पा धातु

से पितृ मा धातु से मातृ और दुह धातु से दुहितृ शब्द उत्पन्न हुए हैं। पा धातु का अर्थ पालना, मा धातु का अर्थ मापना और दुहं धातु का अर्थ दूहना है। सो ऐसा बोध होता है कि पिता परिवार को पालता था। माता मापती थी अर्थात् खाने पीने इत्यादि का बन्दोबस्त करती थी और दुहिता दूध दोहती थी।) पुत्र के लिये संस्कृत पुत्र ज़न्द पुथरो। भाई के लिये संस्कृत भ्रातृ, ज़न्द ब्रातर, फारसी बिरादर, यूनानी फ्रातेर, लातिनी फ्रेटर, प्राचीन जर्मन ब्रुओदेर, सुइडिस और डेनिस ब्रोडेर, एंग्लोसेक्सन ब्रथर, अंगरेजी ब्रदर। बहिन के लिये संस्कृत स्वसृ, लातिनी ससर और सरर, प्राचीन जर्मन सुइस्तेर, गथिक स्विसटर, एंग्लोसेक्सन स्वेसटर और स्वुसटर अंगरेजी सिसटर। चचा के लिये संस्कृत पितृव्य, यूनानी पात्रोस, लातिनी पेट्रूउस। दुहता के लिये संस्कृत नप्तृ, लातिनी नेपस। दुहती के लिये संस्कृत नप्ती, लातिनी नेप्टिस। ससुर के लिये संस्कृत श्वशुर फारसी खुसर, यूनानी हेकुरस, लातिनी ससर, गथिक स्वैहरा। सास के लिये संस्कृत श्वश्रु, यूनानी हेकुरा, लातिनी सक्रुस। बहू के लिये संस्कृत स्नुषा, यूनानी नुयस, लातिनी नुरुस, प्राचीन जर्मन स्नुर, एंग्लोसेक्सन स्नरु। जमाई के लिये संस्कृत जामातृ, यूनानी गाम्ब्रस देवर के लिये संस्कृत देवर, यूनानी दाएर।

वास—वे घर द्वार नगरादि बनाकर वास करते थे। क्योंकि आर्य्य भाषा की भिन्न २ शाखाओं में घर द्वार नगरादि बोधक शब्द एकसां दृष्टि होते हैं। जैसे :—

घर के लिये संस्कृत धाम, यूनानी डमस, लातिनी

हुमुस, स्लेवोनिक डमुह, केलटिक डाएम, फ्रांसीसी डोमा, अंगरेजी डोम। नगर के लिये संस्कृत पुरी, यूनानी पलिस। द्वार के लिये संस्कृत द्वार, यूनानी थुरा, जर्मन थुएर, प्राचीन जर्मन तोर, डेनिश डोर, डच डेउर, एंग्लोसेक्सन डुरु, अंगरेजी डोर।

खेती बारी—उन में खेती बारी का काम बहुत होता था। उन के आर्य्य नाम से स्पष्ट प्रगट होता है कि वे खेती बारी को श्रेष्ठ कार्य्य समझते थे।

उन के किसान होने का प्रमाण जन्द आवस्ता में बहुत स्पष्ट है। उन की एक कहानी के अनुसार अहुर-मज़्द देवता ने उन के महापुरुष जरथुस्त्र को खेती बारी करने के लिये विशेष उपदेश किया। उन के पहिले देश ऐर्य्यानावएजो की उत्पत्ति के विषय में एक श्लोक है जिस के व्याख्यान में विद्वान बनसेन साहिब कहते हैं कि इस श्लोक का अर्थ यह है कि "सब से प्राचीन काल में ऐर्य्यानावएजो ही में खेती बारी होती थी और सब देश बंजर थे"।

ऋग्वेद से भी खेती बारी की श्रेष्ठता प्रगट होती है। ऋग्वेद में "कृष्टि" और "चर्षणि" ऐसे दो शब्द हैं जिन का मूल अर्थ किसान था। परन्तु ऋग्वेद में यह दोनों शब्द मनुष्यार्थ प्रयुक्त हुए हैं (देखो ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ३ ऋचा ७ और १, ४, ६, । १, १७, २ । १, ७, ९ । १, ५९, ५) यदि मनुष्य और किसान एकार्थक (Synonymous) शब्द हो तो ऐसा बोध होता है कि हमारे आर्य्य पितृगण अपने आदि निवास में अदन बाटिका की भी परंपरागत

कथा से जानकार थे। क्योंकि पहिला पुरुष आदम उस पवित्र वाटिका में किसान था। हमारे आर्य्य पितृगण उस आदि पिता के नमूने पर खेती बारी करते थे और इसी लिये खेती बारी को श्रेष्ठ कार्य्य समझते थे। ज़न्द आवस्ता में ऐर्य्यानावएजो को ऐसी पवित्र भूमि बताई है कि उस से भी अदन वाटिका ही की स्मृति प्रगट होती है। सो इस से अनुमान होता है कि मध्य एशियास्थ आदि निवास में हमारे आर्य्य बापदादे किसी न किसी प्रकार से मनुष्य की उस आदि अवस्था से जानकार थे।

कोई कोई विद्वान का विचार है कि उन की आर्य्य वा किसान पदवी उन के पड़ोसी सिम के सन्तानों से प्राप्त हुई होगी। इस का प्रमाण वे यों देते हैं कि असुरिया देश के कीलाकार लेखों में "लाअरि" नामक एक शब्द देखने में आता है। ला का अर्थ नहीं और अरि का अर्थ कर्षित है। लाअरि का अर्थ आकर्षित अर्थात बंजर है। इधर असुरीय शब्द "अरि" इब्री "आरा" शब्द के सदृश है। इब्री भाषा में आरा का अर्थ फल बटोरना। कूशी भाषा में "आरारा" का अर्थ अनाज काटना। इन शब्दों के साथ यूनानी "आराओ" और लातिनी "आरो" शब्दों को मिलाओ। यूनानी आराओ और लातिनी आरो का अर्थ हल चलाना। सो असुरीय अरि, इब्री आरा, कूशी आरारा, यूनानी आराओ और लातिनी आरो प्रायः एकार्थक और कृषि बोधक हैं। यदि यह शब्द पहिले इब्री अथवा असुरीय भाषा में प्रचलित था तो कहना पड़ेगा कि हमारे मध्य एशि-

यास्य आर्य्य पितृगण को आर्य्य पदवी अन्य जाति से प्राप्त हुई।

संस्कृत में सीत्य शब्द का अर्थ अनाज और कर्षित है। यूनानी में सितस् का अर्थ अनाज है। वैदिक संस्कृत में अज्र का अर्थ अनाज का खेत है जो यूनानी में आग्रस और लातिनी में आगर है।

शिल्प—वे कुछ न कुछ शिल्पकार्य्य भी जानते थे। क्योंकि भिन्न २ आर्य्य भाषाओं में कपड़ा बुनना सीना शक्कर मदिरादि का बनाना, बढ़ई आदि शिल्पकार, चांदी लोहादि धातु और धातु निर्म्मित वस्तु प्रायः एकसां नाम युक्त देखने में आते हैं जैसे:—

कपड़े के लिये संस्कृत वस्त्र, जन्द वशत्र, यूनानी एस्थोस्, लातिनी वेसटिस्, गथिक वसटि, अंगरेजी वेसट। कपड़े बुनने के लिये संस्कृत वे और वप्, लातिनी विएओ, प्राचीन जर्मन वाव् अंगरेजी वीव्। कपड़े सीने के लिये संस्कृत सीव्. लातिनी सुओ, प्राचीन जर्मन सिव, गथिक सिउजा, लिथुएनिक सुवु, स्लेवोनिक शिवु, अंगरेजी सो। मदिरा का एक नाम संस्कृत में मधु, यूनानी में मेथु। शक्कर के लिये संस्कृत शर्करा, फारसी शकर, लातिनी साकारम्. सुइडिश सोकार, डेनिश सक्कर, अंगरेजी शुगार। लोहे के लिये संस्कृत अयस, लातिनी आएस, प्राचीन जर्मन एर, गथिक अइस, अंगरेजी आयरन्। चांदी के लिये संस्कृत रजतम्, लातिनी आर्गेन्टम। तलवार के लिये संस्कृत असि. लातिनी एन्सिस। कुल्हाड़ी के लिये संस्कृत परशु, यूनानी पेलेकुस। उस्तरा के

लिये संस्कृत क्षुर, यूनानी क्सुरन। फिलम के लिये संस्कृत वर्म लातिनी आर्म, स्पेनिश और इटलियन आर्मा, अंगरेजी आर्मर। बढ़ई के लिये संस्कृत तक्षन्, यूनानी तेक्तोन्।

पशु—वे गृह पालित पशु भी रखते थे। क्योंकि उन के एकसां नाम ही इस विषय का प्रमाण है जैसे:—

गौ के लिये संस्कृत गौः, फारसी गाओ, डच काए सेक्सन् कू अंगरेजी का। बैल के लिये संस्कृत उक्षन्, फारसी गाओ अखला, सेक्सन् अक्सा, सुइडिश अक्से, अंगरेजी अक्स। घोड़े के लिए संस्कृत अश्व, जन्द अश्प फारसी अस्प, अंगरेजी हर्स। सूअर के लिये संस्कृत बराह, कार्निश बारा, सेक्सन् बर, अंगरेजी बोर। ऊंट के लिये संस्कृत क्रमेल, लातिनी कामेलस, अंगरेजी कमेल। भेड़ के लिये संस्कृत अवि, लातिनी अविस, यूनानी अइस। हंस के लिये संस्कृत हंस लातिनी आन्सर्, प्राचीन जर्मन कंस, जर्मन गंस, अंगरेजी गेंडोर।

नाव—वे नाव चलाना भी जानते थे। जैसे संस्कृत नौ और नाव, यूनानी नौस, लातिनी नाविस्, प्राचीन जर्मन नाके (Nache) एंग्लोसेकसन् नाका, अंगरेजी में युद्ध जहाज के लिये नेवी।

महीने और चांद की गिन्ती—वे चांद के हिसाब से काल बिभाग करते थे। क्योंकि बहुत सी आर्य्य भाषाओं में चांद और महीने का नाम और उन का सम्बन्ध एकसां दिखाई देता है जैसे:—

चांद के लिये, संस्कृत मास, फारसी माह, यूनानी मीनी, एंग्लोसेक्सन् मोना, गॉथिक मेना, प्राचीन जर्मन मेना, अंगरेजी मून। महीने के लिये संस्कृत मास. फारसी माहने यूनानी मीन, लातिनी मेनसिस, लिथुएनिक मेसिस, गथिक मेनथ, एंग्लोसेक्सन् मनाध्, अंगरेजी मन्थ।

राज्य शासन—उन में कुछ कुछ राजतंत्र शासनरीति देखने में आती है। जैसे संस्कृत राजा और राज्ञी, लातिनी रेक्स और रेजाइना।

तृतीय अध्याय ।

धर्म्म ।

एकसां देवता और एकसां संस्कार—आर्य्य जाति की भिन्न भिन्न शाखाओं के प्राचीन धर्म्मशास्त्रों का पाठ करने से उन के उपास्य देवताओं के नाम और गुणों में और उन के धर्म्म संबंधीय संस्कारों में ऐसी एकताई दृष्टि होती है कि उन के पैतृक आदि धर्म्म का पता लगाना बहुत कठिन नहीं है। जिन देवताओं के नाम और गुण एकसां देखने में आते हैं और जिन संस्कारों में एकसां आचार दृष्टि होते हैं आर्य्य जाति के मध्य एशियास्थ प्राचीन निवास में निश्चय उन्हीं देवताओं की पूजा करते थे और उन्हीं संस्कारों का मानते थे। भिन्न भिन्न देशों में आर्य्य जाति के बिखर जाने से उन देवताओं के नाम और गुण में और उन संस्कारों के बाहरी रूप में कुछ २ भेद आ गया है।

आकाश और पृथिवी—मध्य एशियास्थ प्राचीन आर्य्य आकाश और पृथिवी का देवता समझकर उन की उपासना करते थे। क्योंकि आर्य्य जाति की भिन्न२ शाखाओं में आकाश और पृथिवी की पूजा देखने में आती है।

हिन्दु जाति के प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में आकाश देवता कई नामों से पुकारा गया जैसे:—

द्यौष्पिता=ज्योतिः पिता वा आकाश-पिता।

वरुणस्—आवरण करनेवाला वा आश्रय देनेवाला।

अदिति—सीमा रहित।

वृतघ्न—वृत्र नाम असुर वा मेघनाशक।

इन्द्र—बरसानेवाला।

पर्जन्य—पालनेवाला।

वैदिक द्यौः वा द्यौस्, यूनानियों का जेउस् लातिनियों का डिउस् वा जु और टिउटनों का तिउ वा जिओ एक ही आकाश देवता है जिसे उन के पितृगण मध्य एशिया में पूजते थे। वैदिक द्यौ पिता है। यूनानियों ने जेउस को और लातिनियों ने जु को पिता कहा। वैदिक द्यौस्-पितर=यूनानी जेउस्=पातेर=लातिनी जु-पितर।

वैदिक ऋषि द्यौः को पिता और पृथिवी को माता पुकारते थे।

इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवेवाम्।

ऋग्वेद म० १। सू० १८९। ऋ० ११।

अर्थ—हे पितः द्यौ। हे मातः पृथिवी इस यज्ञ में हम जो स्तोत्र उच्चारण करते हैं सो सार्थक हो।

तन्नो वातो मयोभुवातुभेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः

ऋ० म० १। सू० ८९। ऋ० ४।

अर्थ—वायु हम को उस सुख देनेवाले भेषज को प्राप्त करावे। माता पृथिवी और पिता द्यौः हम को उस सुख देनेवाले भेषज को प्राप्त करावें।

ऋग्वेद में ऐसे और भी ऋचायें हैं जिन में द्यौः को पिता और पृथिवी को माता कहा है। द्यौः केवल मात्र मनुष्य ही को पिता नहीं बरन देवगण का भी पिता है।

सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिंद्रस्य कर्त्ता स्वपस्तमो भूत्।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम॥

ऋ० म० ४। सू० १७। ऋ० ४।

अर्थ—अत्यन्त स्तुति योग्य उत्तम वज्रवाला स्वर्ग से अटल और महिमायुक्त इन्द्र को जिस ने उत्पन्न किया उस इन्द्र के उत्पन्न करनेवाले द्यौः ने अपने को वीर पुत्रवाला समझा था और सुकीर्त्तियुक्त हुआ था।

इस ऋचानुसार द्यौः इन्द्र का जनिता अर्थात इन्द्र का उत्पन्न करनेवाला वा पिता है।

द्यौष्पिता जनिता।

ऋ० म० ४। सू० १। ऋ० १०।

अर्थ—द्यौः जो अग्नि का पालनेवाला और पिता है।

इस ऋचा में अग्नि देवता का प्रसंग है। उद्धृत ऋचांस में द्यौः को अग्नि का पिता कहा गया।

द्यौष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृलता नः।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वियंत॥

ऋ० म० ६। सू० ५१। ऋ० ५।

अर्थ—हे पिता द्यौः माता पृथिवी भाई अग्नि और

वसुगण। तुम हम को सुखी करो। हे अदिति के पुत्रगण और अदिति। तुम एकत्र मिलके हम को बहुत सुख दो।

इस ऋचा में वैदिक ऋषि द्यौः और पृथिवी को पिता और माता कहते और अग्नि और वसुगण को भाई पुकारते हैं। सो स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन के विचार में द्यौः और पृथिवी केवल मनुष्य ही के पिता माता नहीं बरन देवगण के भी पिता माता हैं।

हम पहिले कह आये कि यूनानियों के जेउस्-पातेर और लातिनियों के जुपितर का अर्थ भी आकाश-पिता है। होमर कवि के इलियद् नामक महा काव्य में जेउस् को बहुत से सन्तानों का पिता और अनेकानेक नरवंश का जनक कहा गया। इधर यूनानियों में देमेतर नामी एक देवी मानी गई जिस का अर्थ पृथिवी माता है। सो हिन्दु और यूनानी दोनों जाति के साधारण विचार में आकाश और पृथिवी पिता और माता हैं। अब इस साधारण बिश्वास का मूल क्या है। निश्चय इन दोनों जाति के पूर्व पुरुष एकत्र रहते समय मध्य एशियास्थ आदि निवास में आकाश और पृथिवी की उपासना करते थे और उन को पिता और माता नाम से पुकारते थे।

वेदसंहिता का वरुणस् वा वरुण देवता यूनानियों का उरणस् है। वरुणस् आवरणार्थक वृ धातु से निष्पन्न हुआ है। सो वरुणस् आवरण करनेवाला आकाश-देव है। यूनानी पुस्तकों में लिखा है कि उरणस् देवता समस्त बस्तु आवरण कर रखता है। हीसियड् नामक यूनानी ग्रन्थकर्त्ता ने लिखा है कि आकाश-रूपी उरणस्

सकल पदार्थ आवरण करता है और जब वह रात्रि काल में आता है तो पृथिवी को आलिंगन कर सर्वत्र फैला रहता है। सायनाचार्य्य भी ऋग्भाष्य में लिखते हैं कि वरुण देव राव्यभिमानी है, वह अधर्म्मियों को अपने पास से आवरण कर रखता है। (देखो मंत्र २। सू० ८९। अ० ३ का भाष्य)। सो वैदिक वरुणस् और यूनानी उरणस् में कुछ भेद नहीं है।

वर्त्तमान हिन्दु धर्म्म में वरुण देवता समुद्र का राजा है। परन्तु वैदिक वरुण देवता यूनानी उरणस् की नाईं आकाश देव है।

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्मप्रियं वरुणाय श्रुताय।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्य्याय।

ऋ० मंत्र ५। सू० ८५। अ० १।

अर्थ—सुविख्यात दीप्तिमान वरुण के लिये बहुत बड़ा गंभीर और पियारा स्तोत्र उच्चारण करो। पशु हत्याकारी जिस प्रकार चमड़े को फैलाता है वरुण देवता ने उसी प्रकार सूर्य्य के आस्तरण निमित्त अन्तरीक्ष को फैलाया है।

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः।
नीचीनाःस्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः।

ऋ० मंत्र १। सू० २४। अ० १।

अर्थ—विशुद्ध बलवाला वरुण राजा अनादि अन्तरीक्ष में अवस्थित होकर फैले हुए तेजों को ऊपर की ओर

धारण करता है। उन तेजों का मुंह नीचे की ओर परन्तु उन का मूल ऊपर की ओर है जिसतें हम में प्राण स्थापित रहे।

इन दोनों ऋचाओं से स्पष्ट प्रगट होता है कि वैदिक ऋषियों के बिचार में वरुण अन्तरीक्ष वा आकाश सम्बन्धीय देवता था। प्राचीन काल में लोग आकाश को जलमय समझते थे। शायद इसी ख्याल से परवर्त्ती काल के पौराणिक हिन्दुओं ने आकाश राज वरुण को जल राज ठहरा दिया और समुद्र में उस का सिंहासन स्थापन किया।

चाहे कुछ हो वैदिक वरुणस् और यूनानी उरणस् में कुछ भेद नहीं है जिस से जान पड़ता है कि उन के पुरखे मध्य एशिया में एकत्र रहते समय आकाश को विशेषतः रात्रिकाल में समस्त पदार्थों का आवरणकारी जानकर उस की उपासना करते थे।

यूनानियों के मतानुसार उरणस् देव और गाया देवी देवगण के पिता माता हैं। गाया का अर्थ धर्त्ती है। यूनानी गाया संस्कृत गौ है। हिन्दुओं की पौराणिक कहानियों में कहते हैं कि एक समय धर्त्ती ने गौरूप धारण किया था। जन्द आवस्ता में भी धर्त्ती को गौ से उपमा दिई गई। सो यूनानी गाया और संस्कृत भूमि-वाचक गौ एक है जिस से प्रगट होता है कि प्राचीन आर्य्य अपने प्राचीन देश में आकाश पिता और धर्त्ती माता को पूजते थे।

ऋग्वेद में भूमि का एक नाम अरमति है। जन्द

आवस्ता में अरनैति शब्द इसी अर्थ में लिया गया। सो प्राचीन आर्य्य की भूमि पूजा का यह एक और प्रमाण है।

बहुत से वैदिक विद्वान बिचार करते हैं कि वैदिक अदिति भी आकाश है जिस का स्त्रीलिंग में व्यवहार हुआ है। अ पूर्वक दे। धातु क्ति अदिति। दे। धातु का अर्थ छेदन करना। अदिति वह है जो छेदन नहीं हो सकती अर्थात् अखंड या असीम आकाश का नाम अदिति रखा गया*। वैदिक कल्पनानुसार अदिति बहुत से देवताओं की माता है जो आदित्य कहलाते हैं। पिता हो या माता हो इस बिचार से प्रगट होता है कि प्राचीन आर्य्य आकाश के। देवगण का उत्पादक समझते थे।

कोई कोई विद्वान वैदिक वरुण के गुणों को आवस्तिक अहुर मज़्द के गुणों के साथ मिलाकर दोनों के। एक ही देवता बताते हैं। जन्द अहुर-संस्कृत असुर। अहुर वा असुर शब्द का यथार्थ अर्थ क्या है आगे इस का प्रसंग करेंगे। मज़्द का अर्थ ज्ञानी वा सर्वज्ञानी है। से। मेक्स मूलर साहिब जन्द अहुर मज़्द और संस्कृत असुर मेधस शब्दों को अभिन्न बताते हैं। डाक्टर कृष्ण मोहन बंद्योपाध्याय महाशय के बिचार में जन्द मज़्द

---

* "Aditi, an ancient god or godess, is in reality the earliest name invented to express the Infinite; not the Infinite as the result of a long process of abstract reasoning, but the visible Infinite, visible by the naked eye, the endless expanse, beyond the earth, beyond the clouds, beyond the sky."—Max Müller's Rig Veda (translation), Vol. I, (1869). P. 230.

शब्द संस्कृत में महत् है। वह इस शब्द का अर्थ ज्ञानी भी मानते हैं। सो इस सिद्धान्तानुसार अहुर मज़्द सर्वज्ञानी बड़ा असुर है। ऋग्वेद में वरुण को ऐसी पदवी दिई गई।

अस्तभनाद्द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः। आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि। ऋ० मंत्र ८। सू० ४२। ऋ० १।

अर्थ-सर्वज्ञानी असुर वरुण ने द्यौलोक को स्तंभित किया पृथिवी के फैलाव को नापा समस्त भुवनों का सम्राट् बनकर अवस्थित हुआ। वरुण के ये काम अनेक हैं।

आवस्ता के वर्णनानुसार अहुर मज़्द सृजनहार है। उद्धृत ऋचा में वरुण को समस्त भुवनों का सम्राट् वा महाराजा कहा है। आवस्ता के वर्णनानुसार अहुर मज़्द पाप उत्पादक अंग्रामैन्युस का विरुद्ध है। ऋग्वेद के वर्णनानुसार वरुण पाप-देवता निर्ऋति का विरुद्ध है।

शतं ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु। बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत्॥

ऋ० मंत्र ९। सू० २४। ऋ० १।

अर्थ-हे वरुण राजा तेरे शत सहस्र भिषज हैं। तेरी सुबुद्धि फैल जावे और गहरी होवे। निर्ऋति को पराभव करके दूर रख। हमारे किये हुए पापों से हम को मुक्त कर।

सायनाचार्य्य इस ऋचा के भाष्य में निर्ऋति को "पाप देवता" अर्थात् शैतान बताते हैं। पार्सियों के बिचार में अंग्रेमिन्युस भी उन का शैतान है। अहुर मज़्द अंग्रोमैन्युस का बिरुद्ध है। उद्धृत ऋचा में वैदिक ऋषि निर्ऋति का पराभव करके दूर रखने के लिये बरुण से प्रार्थना करते हैं।

आवस्ता में अहुर मज़्द के नाम के साथ मिथ्र नाम एक देवता का नाम प्रायः आता है। ऋग्वेद में वरुण के साथ मित्र देवता का नाम प्रायः आता है और दोनों एकत्र द्विवचन में "मित्रावरुणौ" कहलाते हैं। सो इन बातों पर सोच बिचार करने से अहुर मज़्द और वरुण एक ही देवता बोध होते हैं जो प्राचीन आर्य्यों का आकाश-देव था।

वेद में इन्द्रदेवता का एक प्रसिद्ध नाम वृत्रघ्न है। वृत्रघ्न आवस्ता में वेरेथ्रघ्न कहलाता है। वृत्र वा वेरेथ्र एक असुर का नाम है। हिन्दू कथानुसार वृत्रासुर ने स्वर्ग पर चढ़ाई कर देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया था। पीछे इन्द्र देवता ने अपने वज्र से उस को मार डाला और यों वृत्रघ्न नाम प्राप्त किया। ऋग्वेद में वृत्र-वध का वर्णन अत्यन्त सरल है। इस कारण वैदिक विद्वान मेक्स मूलर साहिब उस को एक प्राकृतिक रूपकमात्र समझते हैं। उन के विचार में वृत्र का अर्थ मेघ है। वृष्टिदाता आकाश देवता बज्र वा बिजली से मेघ को विदारण कर बारिष बर्साता है। ज़न्द आवस्ता में लिखा है कि वेरेथ्र ने बाबुल नगर में अर्द्वीशूरा नामी एक देवी से प्रार्थना किई कि उस की आशीस से समस्त

धर्यात्मा निवासियों का ध्वंस करे। कहते हैं कि देवी ने उस की प्रार्थना नहीं सुनी। परन्तु तौभी वह अपनी दुष्टता में लगा रहा। अन्त में वेरेथ्रघ्न देवता ने उस को मार डाला।

जन्द आवस्ता में वेरेथ्रघ्न देवता का अत्यन्त गुण कीर्त्तन किया गया। एक पूरा "याश्त" वा पर्व जिस में ६३ मंत्र हैं वेरेथ्रघ्न के गौरव से पूर्ण है जिन में से एक दो पद्य उदाहरण स्वरूप उद्धृत करते हैं।

"अहुर के सिरजे हुए वेरेथ्रघ्न को हम यज्ञ चढ़ाते हैं"।

"जरथुस्त्र ने अहुर मज़्द से पूछा है दयालु अहुर मज़्द स्वर्गस्थ यज़तों (पूज्यमानों) में सब से उत्तम अस्त्र-धारी कौन है। अहुर मज़्द ने उत्तर दिया है पवित्र ज़रथुस्त्र, अहुर का सिरजा हुआ वेरेथ्रघ्न (ही सब से उत्तम अस्त्रधारी है)।"

यूनानी कथाओं में वेदोक्त वृत्र वा आवस्तिक वेरेथ्र अर्थ्रस् नाम से प्रसिद्ध है। अर्थ्रस् को कुत्ता कहा गया और उस के बध करनेवाले हरकूलिस देवता को "अर्थ-पन्" पदवी दिई गई। सो वृत्र, वेरेथ्र, अर्थ्रस और वृत्रघ्न, वेरेथ्रघ्न और अर्थ्रपन से प्रगट होता है कि प्राचीन आर्य्य हिन्दु, पार्सी, यूनानी आदि शाखाओं में विभक्त

---

*"The second dog is known by the name of Orthros the exact copy, I believe, of the Vedic Vritra. That the Vedic Vritras should reappear in Greece in the shape of a dog need not surprise us....Thus we discover in Hercules the Victor of Orthros, a real Vritrahan." Max Müller's *Chips from a German Workshop.* P. 185.

होने से पहिले ही उन के पैतृक निवास में इस प्रकार की एक कहानी से जानकार थे। यद्यपि मेक्स मूलर साहिब के विचारानुसार इस कहानी का प्राकृतिक रूपक-मात्र मान लिया जाय तथापि इस से ज्ञात होता है कि मध्य एशियास्थ आदि निवास में हमारे पुरखे वृत्रघ्न वा वेरेथ्रघ्न नाम से मेघ विदारक आकाश-देव की उपासना करते थे।

वेद में इन्द्र देवता ही वृत्रघ्न है वैदिक इन्द्र पार्सियों का अन्द्र है। इन्द्र शब्द इन्द्र धातु से उत्पन्न हुआ है। इन्द्र धातु वर्षणार्थक है। सो इन्द्र वह देवता है जो वर्षाता है। ऋग्वेद में इन्द्र देवता के नाम पर जितने स्तुति मंत्र हैं और किसी देवता के नाम पर उतने नहीं हैं जिस से प्रगट होता है कि इन्द्र वैदिक ऋषियों का सब से बड़ा देवता था। इधर जन्द आवस्ता में वेरेथ्रघ्न देवता का जिस प्रकार आदर है इन्द्र देवता का उसी प्रकार अनादर और विद्वेष देखने में आता है यहां तक कि पार्सियों ने इस को और इस के दो साथियों को नरक-वासी और अंग्रोमैन्युस के मंत्री ठहराया जिस से अनु-मान होता है कि हिन्दू और पार्सियों के पुरखों में किसी कारण अनबन हो गया था और इस लिये हिन्दुओं के पुरखों ने वृत्रघ्न देवता का एक नया नाम इन्द्र वा बारिष बर्सानेवाला रक्खा। पार्सियों के पुरखों ने इस नये नाम की विरुद्धता में इन्द्र को नरक में भेज दिया। भारतवर्ष में बारिष का बहुत समादर है। सो इस देश में बर्सानेवाले इन्द्र को वैदिक ऋषियों ने सब से ऊंची पदवी दे दिई। चाहे कुछ ही हो वेद और

आवस्ता दोनों ग्रन्थों में इस देवता का प्रसंग पाये जाने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राचीन आर्य्य परस्पर पृथक् होने से पहिले मेघ विदारक वृष्टिदाता आकाश-देव की उपासना करते थे।

हिन्दु और यूनानी कहानियों को मिलाने से कई बातों में इन्द्र और जेयस की भी एकताई दृष्टि होती है। पौराणिक कथानुसार इन्द्र देव-राज है यूनानी कथानुसार जेयस भी देव-राज है। इन्द्र वज्रधारी है जेयस भी वज्रधारी है। वेद के वर्णनानुसार देवताओं का कारीगर त्वष्टा वज्र का बनानेवाला है यूनानी कथानुसार हेफेष्टस् ने अपने पिता जेयस् के लिये वज्र निर्माण किया। इन्द्र के वज्र से देव शत्रु वृत्र और उस के साथी अन्यान्य असुर हत हुए जेयस के वज्र से देवशत्रु तितेन कुल निर्मूल हुआ। कितनी एक बातों में और भी कई एक देवताओं के साथ इन्द्र की सदृशता पाई जाती है। सो केवल हिन्दु और पार्सियों के पुरखों के परस्पर पृथक् होने से पहिले ही नहीं बरन उन से यूनानियों के पुरखों के पृथक् होने से पहिले भी मध्य एशियास्थ पैतृक निवास में इन्द्र वा जेयस वा और नामों से आकाश देव की उपासना होती थी।

ऋग्वेद में कहीं कहीं अहि नामक एक अजगर से वृत्र की उपमा दिई गई और इन्द्र को अहिवधक कहा। परन्तु कहीं कहीं त्रित वा त्रैतन को अहि नाशक बताया। त्रैतन शब्द केवल एक स्थान पर आया अधिकांश स्थानों में त्रित शब्द का व्यवहार हुआ। त्रित और इन्द्र दोनों अहिनाशक होने से दोनों एक ही

देवता ठहरते हैं। सायनाचार्य्य ने कहीं कहीं अहि का अर्थ मेघ भी किया (जैसे १। ३२। १)। सो वृत्र-हन्ता मेघ-विदारक इन्द्र और अहिवधक त्रित एक ही आकाश-देव है।

वेद में त्रित को आप्त्य कहा। सायनाचार्य्य तैत्तिरीय संहितानुसार यों लिखते हैं कि "अग्नि ने जल से एकत, द्वित और त्रित नामक तीन पुरुषों को उत्पन्न किया था। एक समय त्रित जो जल पीने को गया तो एक कुएं में गिर पड़ा। उस को वहीं पर रुद्ध करने के अभिप्राय से असुरों ने उस कुएं पर एक आच्छादन सिरजा। परन्तु त्रित उसे विदारण कर कुएं में से निकल आया"। जल का दूसरा नाम "आप" है। जल वा आप से उत्पन्न हुआ इस कारण सायनाचार्य्य के विचार में त्रित आप्त्य कहलाता है। परन्तु यास्क ऋषि निरुक्त में "आप" से अन्तरीक्ष अर्थ करते हैं। सो यद्यपि यास्क ऋषि का अर्थ ग्रहण किया जाय तो आप्त्य त्रित अन्तरीक्ष वा आकाश सम्बन्धीय देवता ठहरता है और इस सिद्धान्तानुसार आकाश देव इन्द्र और त्रित में कुछ भेद नहीं रहता है।

वेदोक्त अहि आवस्ता में अजिदहक है। शायद इसी अजिदहक शब्द से फारसी और उरदू भाषा में अजगर को अजदहा कहते हैं। अहि को वेद में कभी कभी दास भी कहा। सो अहिदास वा अहिदहक और अजिदहक में कुछ भिन्नता नहीं है। आवस्ता में अजिदहक का वध करनेवाला थ्रेतन कहलाता है जो आप्त्य-

बंशीय माना गया। से अहिवधक आप्त्य त्रित वा श्रैतन और अजिवधक आथ्य श्रेतन एक ही बोध होता है। इसी अजिदहक का दूसरा नाम वेरेघ्न है।

फारसी कवि फिर्दौसी के शाहनामा नाम महाकाव्य में जोहक नामक एक दुष्ट राजा का वृत्तान्त है। कहते हैं कि एक दिवस पाप-पुरुष (अर्थात शैतान) एक प्रभु-भक्त सेवक का रूप धर राजा पास आकर कहने लगा हे पृथ्वीनाथ चिरंजीव होके सुख और प्रताप से राज्य करो। महाराज के दर्शन से मेरी अभिलाषा पूर्ण हो गई। यद्यपि कृपालु होके आज्ञा दें तो मेरी एक अभिलाषा बाकी है सो भी पूर्ण हो जाय। मैं तो योग्य नहीं हूं तथापि महाराज का आदेश हो तो महाराज के कंधों पर चूमा देकर जीवन सार्थक करूं। जोहक ने समझा कि यह तो एक छोटी बात है। सो उस ने दासरूपी दुष्टात्मा की बिनती ग्राह्य किई। इस पर पापपुरुष उस के कंधों पर चूमा देके ज्यों अन्तर्धान हुआ त्यों उस के दोनों कंधों पर दो काले सांप निकल आये। राजा ने भय चकित हो अपने भृत्यों को आज्ञा दिई और उन्हों ने दोनों सांपों को काट डाला। परन्तु तुरन्त दो काले सांप फिर उग आये। अब दुष्टात्मा एक वैद्य के भेष में आके कहने लगा कि महाराज प्रत्यह मनुष्य का भेजा इन को खाने को दीजिये और यों इन का प्रतिपालन कीजिये। अब सांपों के भोजन के लिये राजा के आदेश से प्रतिदिन नरहत्या होने लगी। प्रजाओं में हाहाकार पड़ गया और राज्य में महा अराजकता फैल गई। अन्त में प्राचीन राजबंशीय

फरीदून नामक बीर ने जोहक से युद्ध किया और उस को पकड़के एक अथाह गढ़े में डाल दिया।

कोई कोई विद्वान विवेचना करते हैं कि महाकवि फिर्दौसी ने पूर्वोक्त अजिदहक को जोहक और थ्रेतन को फरीदून नाम से प्रख्यात कर इस कहानी को रचा है। सो तीन मस्तकवाला अहिदास अजिदहक और जोहक एक है और उस का वध करनेवाला त्रित थ्रेतन और फरीदून भी एक है।

मेक्स मूलर साहिब कहते हैं कि इटली और जर्मन देश की प्राचीन कथाओं में त्रैतन की कहानी का रूपान्तर प्राप्त होता है।

कोई कोई विद्वान विचार करते हैं कि वैदिक अहि यूनानियों का एखिस् वा एखिद्ना नामक अजगर है। त्रित का नाम यूनानी में बहुत स्पष्ट नहीं मिलता है। परन्तु जेयस देव की कन्या अथेना (संस्कृत अहना) कभी कभी त्रित-कन्या (Tritogeneia) नाम से वर्णित हुई है। फिर यूनानियों का त्रितन (Triton) नामक एक जल-देवता था। सो आप्त्य वा जल सम्बन्धीय त्रित इस देवता से भी मिलता है। सो प्रतीत होता है कि त्रित आर्यों का एक प्राचीन देवता था जिसे मध्य एशिया में मानते थे।

इन सब बातों पर सोच विचार करने से सिद्ध होता है कि प्राचीन आर्य्य अपने पैतृक निवास में ऊपर शामियाने की नाईं आवरणकारी आकाश को ढांपने का आश्रय-देनेवाला पिता और नीचे फल फूल देने-

वाली फैली हुई पृथिवी को पालनेवाली माता समझकर उन की उपासना करते थे। कभी कभी नाना प्रकार भयानक रूपवाला मेघ आकाश को घेर लेता था जिस को वे दैत्य वा दानव समझते थे। मेघों में बिजली कड़कती थी जिस के निनाद से चारों दिशा कांप उठते थे। तब वे भयचकित चित्त से आकाश पिता की ओर ताकते थे। इतने में मेघ गलके मूसलधार वृष्टि होने लग जाती थी। सो वे मन में सोचते थे कि आकाश पिता ने अपने वज्र से मेघासुर* का विदारण कर धर्त्ती पर जल बरसा दिया। तब उस आकाश पिता को वृत्रघ्न इन्द्र त्रित वा तत् सदृश अन्यान्य नामों से पुकारते थे।

सूर्य्य—प्राचीन काल में आर्य्य और अनार्य्य प्रायः समस्त जातियों में सूर्य्य की उपासना देखने में आती है। वैदिक सूर्य्य, यूनानियों का हेलियस लातिनियों का सल, टिउटनों का टीर और पार्सियों का खुरशीद एक ही सूर्य्य-देव है।

हिंदुओं के साधारण विचार में सूर्य्य-देव बारह हैं जिन्हें द्वादश आदित्य कहते हैं। वेद में असीम आकाश का नाम अदिति है। सो द्वादश आदित्य अदिति वा असीम आकाश के सन्तान हैं। इन में से एक का नाम मित्र है। वैदिक मित्र आवस्ता में मिथ्र है जो उन के मतानुसार आकाशदेव अहुर मज़्द से उत्पन्न हुआ।

* वृत्र शब्द भी वृ धातु से निष्पन्न हुआ। वृ धातु आवरणार्थक है। सो मेघ से आकाश को ढांपते देखकर मेघ को वृत्र कहा होगा।

वेद के एक और आदित्य का नाम अर्य्यमन् वा अर्य्यमा है जो आवस्ता में ऐर्य्यमन कहलाता है। हिन्दू रोग-शान्ति निमित्त सूर्य्य-देव की पूजा करते हैं पारसी ऐर्य्य-मन् देव को रोगोपशमकारक बताते हैं। वैदिक एक और आदित्य त्वष्ट् वा त्वष्टा कई बातों में यूनानियों का हेफेष्टस् से मिलता है। दोनों आकाश सन्तान हैं। त्वष्टा ने आकाशदेव इन्द्र के लिये वज्र निर्माण किया हेफैष्टस् ने आकाश-देव जेयस के लिये वज्र निर्माण किया।

युञ्जंति ब्रध्नमरुषं चरंतं परि तस्थुषः।
रोचंते रोचना दिवि।

ऋ० म० १। सू० ६। ऋ० १।

मेक्स मूलर साहब का अर्थ—Those who stand around him, while he moves on, harness the bright red steed: the lights of heaven shine forth. वह जब चलता है उस के चारों ओर के खड़े होनेवाले उज्जल लाल घोड़े को जोतते हैं आकाशस्थ दीप्तियां दीप्त पाती हैं।

उद्धृत ऋचा में "अरुष" शब्द का व्यवहार हुआ। मेक्स मूलर साहब के विचार में इस शब्द का आदि अर्थ लाल वर्ण है परन्तु विशेष्य रूप से प्रयोग होने से अरुष सूर्य्य के एक घोड़े का नाम होता है। सूर्य्य का यही लाल घोड़ा अरुष यूनानियों में रूपान्तर प्राप्त होके "एरस" बन गया जो उन का कामदेव है। सूर्य्य के घोड़ों का साधारण नाम हरित् है इस लिये सूर्य्य को

हरिदश्व कहते हैं। मेक्स मूलर साहिब समझते हैं कि ये हरित् रूपान्तर प्राप्त होके यूनानियों में रूपलावण्य-वती खारितेस् नाम्नी देवियां बन गईं। सबेरे सूर्य्योदय समय रंगीली सूर्य्य-रस्मि अत्यन्त मनोरम होती है और सूर्य्य के आगे आगे दौड़ती हुई दिखाई देती है। इसी प्राकृतिक शोभा से मोहित होके यूनानियों ने सूर्य्य किरणों को लावण्य की देवियां या उन में से एक को प्रेमदेव कल्पना कर लिया। वैदिक ऋषियों ने भी उस प्राकृतिक शोभा को नाना प्रकार की कल्पना से प्रकट किया जिन में से एक कल्पनानुसार ये प्राभातिक किरण सूर्य्यदेव के रथ के घोड़े हैं।

आवस्ता में भी सूर्य्यदेव खुरशीद अश्वयुक्त देखने में आता है। जैसे—"अमर दीप्तिमान शीघ्रगामी अश्वयुक्त खुरशीद को हम यज्ञदान करते हैं ·· जो पुरुष अमर दीप्तिमान् शीघ्रगामी अश्वयुक्त खुरशीद को यज्ञदान करता है सो अहुर मज़्द को यज्ञदान करता है"। देखो खुरशीद यास्त। सो संभवतः हिन्दु और पार्सियों के पुरखों के परस्पर पृथक होने से पहिले ही अश्व से सूर्य्य किरणों की उपमा दिया करते थे।

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये।
स चेत्ता देवता पदम्॥

ऋ० म० १। सू० २२। ऋ० ५।

अर्थ-हिरण्यपाणि सविता को मैं रक्षा करने के लिये बुलाता हूं वह (यजमान का) पद बतावेगा।

इस ऋचानुसार सविता वा सूर्य्य-देव हिरण्यपाणि अर्थात् सोनहरे हाथवाला है। किसी वैदिक कवि ने प्रभात या संध्या समय सूर्य्य किरणों का स्वर्ण वर्ण देख-कर उन किरणों को सूर्य्य देवता के सोनहरे हाथ कहा होगा जिस से परवर्त्ती काल में सूर्य्य देवता को सचमुच सोने का हाथवाला कल्पना कर लिया और यों इस के विषय में एक कहानी गढ़ लिई कि किसी यज्ञ में अन्याय रीति से हव्य ग्रहण करने से सूर्य्य देवता का एक हाथ कटके गिर पड़ा तिस पर ऋत्विजों ने उस को एक सोने का हाथ बना दिया। जर्मन लोगों ने अपने सूर्य्य देव टीर के विषय में भी ऐसी एक कहानी बनाई है कि टीर देवता ने बाघ के मुंह में हाथ डालने से बाघ ने उस का हाथ काट लिया। जर्मन लोग मृगया-प्रिय हैं। सो उन की कहानी भी उसी के अनुरूप बनी।

ऋग्वेद में यम नामक एक देवता पाया जाता है। वर्त्तमान हिन्दु धर्म्म में यम नरकपुरी का राजा समझा जाता है। यम को विवस्वान वा सूर्य्य देवता का पुत्र मानते हैं जो सरण्यु वा ऊषा के गर्भ से उत्पन्न हुआ। सूर्य्य और ऊषा के मिलन समय दिवारंभ होता है। सो मेक्स मूलर साहब अनुमान करते हैं कि सूर्य्य और ऊषा के आलिंगन से जो यम उत्पन्न हुआ सो दिन है। ऋग्वेद में यम की बहिन यमी का भी प्रसंग है जिस को मेक्स मूलर साहिब रात्रि बताते हैं। सो वैदिक यम और यमी उन के विचार में दिवा रात्रि हैं। वह विवस्वान को आकाश और यम को सूर्य्य भी कहते हैं। अर्थात यम दिवा वा सूर्य्य है। परन्तु हिन्दु शास्त्रों में जो

द्वादश आदित्यों के नाम पाये जाते हैं उन में विवस्वान भी एक आदित्य है। सो विवस्वान अदिति वा आकाश-पुत्र सूर्य्य है और यम सूर्य्य पुत्र है। वैदिक यम सूर्य्य हो वा सूर्य्य-पुत्र दिवा हो अब तो वह नरकपुरी का राजा ही समझा जाता है। यम किस प्रकार से परलोक का राजा कल्पना किया गया इस के विषय में मेक्स मूलर साहिब कहते हैं कि प्राचीन ऋषिगण पूर्व दिशा को जीवनोत्पत्ति स्थल और पश्चिम दिशा को जीवनान्त स्थल अनुमान करते थे। सूर्य्य पूर्व दिशा में उदित होकर पश्चिम दिशा में अस्त होता है अर्थात जीवन का मार्ग भ्रमणपूर्वक परलोक का मार्ग दिखाता है। इसी कल्पना-नुसार यम परलोक का राजा अनुभव किया गया। (देखो Science of Language Vol II. P. 562)

हिंदुओं का विवस्वान पुत्र यम पार्सियों का "यिमो विवन्घातो पुथ्रो" है अर्थात यिमो विवन्घाओ का पुत्र है। संस्कृत विवस्वान् वा विवस्वत् = जन्द विवन्घाओ। संस्कृत यम = जन्द यिमो वा यिम। साधारण बोली में हिन्दु लोग यम को "जम" कहते हैं पार्सी लोग भी यिमो को जम या जमशीद कहते हैं। यिम वा जमशीद उन की कथानुसार परम सौभाग्यवान राजा था। कुछ काल राजत्व कर उस ने पृथ्वी को मनुष्य और अन्यान्य प्राणी से पूर्ण किया और अन्त में उन में से कुछ उत्तम मनुष्य और उत्तम प्राणियों को लेकर "वर" नामक एक नये स्थान को चला गया जिसे उस ने सिरजा था। कहते हैं कि वह स्थान सोनहरे स्तंभों से घेरा हुआ था और वहां सदा सुख और आनन्द रहता था। वहां

अज्ञान, अधर्म्म दरिद्रता रोग और मृत्यु का नाम तक न था। यिम लोक का यह वर्णना वैदिक यम-लोक के वर्णन से बहुत मिलता है जैसे :—

यत्र ज्योतिरजस्त्रम् यस्मिन् लोके स्वर् हितम्।
तस्मिन् माम्धेहि पवमान अमृते लोके अक्षिते।

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनम् दिवः।
यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माम् अमृतम् कृधि॥

यत्रानुकामम् चरणम् त्रिनाके त्रिदिवे दिवः।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतम् कृधि॥

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतम् कृधि॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतम् कृधि॥

ऋ० म० ९। सू० ११३। ऋ० ७-११।

अर्थ-हे पवमान सोमदेव। जहां अधिकताई से ज्योतिः है और जहां स्वर्ग लोक अवस्थित है उस अमृत अक्षय लोक में मुझ को ले चल। जहां वैवस्वत (अर्थात् यम) राजा है जहां स्वर्ग का द्वार है और जहां विस्तृत जल राशि हैं वहां मुझ को अमर कर। जहां इच्छानुरूप विचरण किया जाता, जहां ज्योतिष्मान् लोक विद्यमान हैं द्युलोक के उस त्रिनाभि-युक्त पवित्रस्थान में मुझ को अमर कर। जहां समस्त कामना निःशेष होती हैं। जहां सूर्य्यदेव है। जहां स्वधा और तृप्ति है

वहां मुझ को अमर कर। जहां बहुत आनन्द और बहुतेरे अमोद प्रमोद हैं और जहां सर्व्व कामना पूर्ण होती हैं वहां मुझ को अमर कर।

इन ऋचाओं में वैदिक ऋषियों के परलोक सम्बन्धीय अभिलाषा प्रकटित हुई है। छठवें ऋचानुसार उस परलोक में राजा वैवस्वत अर्थात् यम अवस्थित है। परवर्त्ती काल की यमपुरी इस प्रकार सुखमय स्थान नहीं है। बरन अत्यन्त दुःख और यंत्रणामय स्थान है। सो वैदिक विवस्वान पुत्र यमराजा का सुख और आनन्द पूर्ण राज्य आवस्तिक विवनघाओ-पुत्र यिम के सुख और आनन्द पूर्ण राज्य से अधिकतर मिलता है। शायद इसी लिये यम को धर्म्मराज भी कहते हैं। चाहे कुछ हो ऐसी २ कल्पना से प्रतीत होता है कि मध्य एशियास्थ पैतृक निवास में केवल सूर्य्य की उपासना मात्र ही नहीं होती थी बरन सूर्य्य वा सूर्य्य-पुत्र के विषय में नाना प्रकार कहानियां भी बन गई थीं।

ऊषा—प्रभातकाल को ऊषा कहते हैं। उस समय भूमंडल की मनोहर शोभा से मोहित होकर प्राचीनकाल के कवियों ने कवित्व पूर्ण भाव से ऊषा के विषय में कितनी ही मनलगन कहानियां रची हैं। वेद में ऊषा एक मनोरमा देवी है। यूनानी देव कथाओं में भी ऊषा एक मनोरमा देवी है। संस्कृत ऊष और ऊषस् यूनानी में आओस् और एओस् और लातिनी में अरोरा है। प्रसिद्ध विद्वान डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र महाशय कहते हैं कि उस के नाम ऋग्वेद में अर्जुनी, वृसय, दहना, उषस्, सरमा और सरयु हैं जो यूनानी

में आर्गिनरिस् ब्रुसेइस्, दफने, एओस् हेलेन और एरिनिस् हैं* ।

सूर्य्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।

ऋ० म० १ । सू० ११५ । ऋ० २ ।

अर्थ—मनुष्य जिस प्रकार नारी के पश्चात् जाता है सूर्य्य उसी प्रकार दीप्तमान ऊषा के पश्चात् आ रहा है ।

इस ऋचा में ऊषा की सौन्दर्य्य से आसक्त होकर उस को आलिंगन करने के लिये सूर्य्य देव उस के पश्चात् धावमान हो रहा है । यूनानियों में भी ठीक इसी प्रकार का वर्णन है कि आपल्लो (अर्थात् सूर्य्य) देव ने दफने (अर्थात् दहना) देवी के पश्चात् धावन किया और उस को पकड़ लेते ही वह मर गई । इस कहानी का अर्थ अत्यन्त सरल है । सूर्य्योदय होने पर ऊषा नष्ट होती । इस प्राकृतिक उपमा से देव-कथाओं में ऐसी ऐसी कहानी गढ़ी गई । ऊषा का एक वैदिक नाम अहना है जो यूनानी में आथेना और लातिनी में मिनर्भा है । जिस हाल हिन्दु और यूनानी दोनों जातियों में ऊषा देवी का प्रसंग होता है तो निश्चय बोध होता है कि

---

* "The heroine of the stories must be the Dawn, aptly represented as a charming maiden, and her names in the Rig Veda are Arjuni, Brisaya. Dahana, Ushas, Sarama, and Saranyu, and all these names reappear among the Greeks as Argynoris, Briseis, Daphne, Eos, Helen, and Erinys" *Indo Aryans*, Vol. II, article "Primitive Aryans."

उन के पुरुखों के परस्पर पृथक होने से पहिले वे ऊषा को देवी कल्पना कर उस की उपासना करते थे।

वायु—यह भी एक प्राचीन आर्य्य देवता है। वैदिक वायु आवस्ता में भी यही नाम रखता है। "निज्ब्येमि वा तो तख्मो मज़्दाता ध्येंत श्रोर दुग्ध अहुरो-मज़्दाओ" "मैं अहुर मज़्द की पवित्र कन्या मज़्द सपन्दार, से उत्पन्न किया हुआ शक्तिमान वायु को (वा तो) आह्वान करता हूं"। ज़न्द वा तो संस्कृत में वात है। संस्कृत वायु—ज़न्द वयोः। ज़न्द आवस्ता के रामयास्त में श्वेतन वायु से प्रार्थना करता है 'हे ऊपर चलनेवाला वायु मुझ को यह बर दे कि मैं त्रिमुख त्रिमस्तक अज़ि-दहक को परास्त कर सकूं"। इत्यादि। संस्कृत पवन—यूनानी और लातिनी पन और फवनियस्।

अग्नि—आर्य्य जाति की प्रायः समस्त शाखाओं में किसी न किसी नाम से अग्नि की उपासना देखने में आती है। पार्सी जाति तो आतिश-परस्त वा अग्नि पूजक नाम से प्रसिद्ध ही है। अग्नि को वे अतर नाम से पूजते हैं और कहते हैं कि अतर अहुर मज़्द का पुत्र है।

हमारे पूर्व पुरुष वैदिक ऋषिओं का भी एक प्रधान देवता अग्नि था। ऋग्वेद का प्रथम मंत्र उसी की स्तुति में उच्चारित हुआ।

अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥

ऋ० म० १। सू० १। ऋ० १।

अर्थ—मैं अग्नि की स्तुति करता हूं जो यज्ञ का पुरोहित, दीप्तिमान, देवताओं का बुलानेवाला ऋत्विक और बहुत रत्नधारी है।

यूनानी अग्निदेव हेफेस्टस् उन के आकाश देव जेयस् का पुत्र है। वेद में अग्नि का यविष्ट अर्थात् तरुण पदवी दिई गई। कोई कोई विद्वान यूनानी हेफेस्टस् और संस्कृत यविष्ठ को एक ही देवता समझते हैं। संस्कृत अग्नि लातिनी इग्निस् और स्लावनिक ओग्नि एक ही है। हमारे प्राचीन ऋषिगण दो लकड़ियां घिसकर आग निकाला करते थे इस लिये वेद में अग्नि को प्रमन्थ कहा है। यूनानी कथानुसार प्रमेथेयस् देवता ने मनुष्य के उपकारार्थ स्वर्ग से अग्नि को चुरा लाया था। दोनों देवता अग्नि सम्बन्धीय होने से कोई कोई विद्वान अनुमान करते हैं कि वैदिक प्रमन्थ और यूनानी प्रमेथेयस् एक है। संस्कृत अग्निदेव भरण्यु यूनानी अग्नि देव फरोणेयस है। संस्कृत उल्का और लातिनी वल्कान् एक ही अग्नि देवता है। वेद में अग्नि देवता का एक नाम नराशंस है। आवस्ता में यह शब्द नैर्यशंघो है। हिन्दु कथानुसार अंगिरावंशियों ने अग्निपूजा प्रचलित किई। आवस्ता में अंग्रो नामक एक पुरोहित वंश देखने में आता है। सो इन वर्णनों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राचीन आर्य्य एकत्र वास समय मध्य एशियास्थ स्वदेश में अग्नि-पूजा करते थे।

सोम—ऋग्वेद में शायद ही कोई सूक्त होगा जिस में सोमरस पीने के लिये देवता बुलाये न गये हों। ऋग्वेद

के नवें मंडल में तो 'पवमान सोम" ही एक मात्र देवता है। सामवेद का तृतीयांश ऋग्वेद के इसी नवें मंडल से उद्धृत किया गया। सोम एक प्रकार लता का नाम है। पहिले उसे पत्थर पर पीसते थे पीछे दोनों हाथों से मलकर उस का रस निकालते थे। अन्त में भेड़ के रोम की छलनी में छानकर और उस में दूध आदि मिलाकर भांग की नाईं पीते थे। (देखो बाबू रमेश चन्द्र दत्त के ऋग्वेद के बङ्गानुवाद का टीका पृष्ठ १२४७।)

संस्कृत सोम ज़न्द होओमा वा होम। वेद और आवस्ता दोनों ग्रन्थों में इस पदार्थ की अत्यन्त प्रशंसा और स्तुति दृष्ट होती है जिस से बहुत से विद्वान विवेचना करते हैं कि उभय जाति के पुरखे एकत्र वास समय केवल होओमा वा सोमरस पीते ही न थे परन्तु उसे देवता मानकर उस की स्तुति भी करते थे।

क्या वे मूर्त्ति पूजक थे?—यद्यपि प्राचीन आर्य्य आकाश पृथिवी सूर्य्य ऊषा वायु अग्नि सोम इत्यादि अनेक देव देवी की उपासना करते थे तथापि ठीक ठीक जान नहीं पड़ता कि वे मध्य एशियास्थ आदि निवास में इन देव देवियों की मूर्त्ति बनाकर पूजते थे या नहीं। आर्य्य जाति की हिन्दु शाखा की सब से प्राचीन रचना ऋग्वेद है। ऋग्वेद के मंत्रों का पाठ करने से स्पष्ट बोध होता है कि हिन्दु-आर्य्य वैदिक काल में मूर्त्तिपूजक न थे। यदि वे मध्य एशियास्थ पैतृक निवास में मूर्त्तिपूजक होते तो इस देश में आकर अवस्थित होने के पश्चात् भी मूर्त्ति पूजते रहते। इसी प्रकार पार्सी जाति भी

आर्य्य जाति की एक और प्रसिद्ध शाखा है यदिच अग्नि पूजक नाम से विख्यात है तथापि आज तक मूर्त्ति पूजा नहीं करती। इस में कुछ संदेह नहीं कि यूनानी रोमी इत्यादि यूरपीय आर्य्य अपने देव देवियों की मूर्त्ति बनाने में बहुत प्रसिद्ध हुए और हिन्दु आर्य्य भी परवर्त्ती काल में मूर्त्ति पूजा करते हुए दृष्टि होते हैं और अब लों मूर्त्ति पूजा करते हैं। संभवतः अनार्य्य मूर्त्ति पूजक लोगों के देश में आ बसने और उन में रहने सहने से उन की देखा देखी इन आर्य्यों ने भी अपनें देव देवियों की मूर्त्ति बनानी सीख लिई।

क्या वे एकेश्वरबादी थे?—यदिच अपने पैतृक देश में प्राचीन आर्य्य मूर्त्ति पूजक न थे तथापि वे एक अद्वितीय ईश्वर के उपासक भी न थे। क्योंकि इति पूर्व दिखाया गया कि वे आकाश पृथिवी अग्नि वायु इत्यादि प्राकृतिक पदार्थ वा प्राकृतिक शक्तियों को देवता समझकर उन की उपासना करते थे। सो वे एक अद्वितीय ईश्वर के ज्ञान से खाली रहे। इस लिये उन को एकेश्वरवादी कहने की अपेक्षा बहु देववादी कहना ही उचित है।

इस से यह नहीं समझना चाहिये कि प्राचीन आर्य्य एकेश्वर के संस्कार से बिलकुल खाली थे। एकेश्वर का संस्कार मनुष्य-चित्त का स्वाभाविक संस्कार है। इस संस्कार को मनुष्य अपने मन से किसी प्रकार से मिटा नहीं सकता है। इस लिये आर्य्य जाति की प्राचीन रचना जन्द आवस्ता और ऋग्वेदादि के पाठ करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राचीन आर्य्य जब जिस देवता

की उपासना करते थे तब उसी देवता में पूर्ण ईश्वरीय गुण की कल्पना करते थे अर्थात् सृष्टि करना पालन करना, न्याय करना इत्यादि गुण और कार्य्य आकाश पृथिवी अग्नि वायु सूर्य्यादि सृष्टि और ससीम पदार्थों पर आरोप करते थे। जो सृष्टिकर्त्ता के गुण सृष्टि पदार्थों पर आरोप करने में जो दोष होता है उन के धर्म्म में वही दोष था। ईश्वर का ज्ञान न होने वा ईश्वर में ईश्वरताई की भावना न करने से उन को हम एकेश्वरवादी नहीं कह सकते हैं।

उन के धर्म्म का नाम—यूरपीय विद्वान प्राचीन आर्य्य धर्म्म को स्वभावोपासना (Physiolatry or Physical Religion) कहते हैं। प्राचीन आर्य्य स्वभाव वा प्रकृति में नाना प्रकार की शक्तियों को कार्य्य करते देखकर उन शक्तियों को देवता कल्पना करते थे और उन कल्पित देवताओं में व्यक्तित्व आरोप कर उन को अपने सुख दुःख के साथी समझते थे। हर्ष के समय उन देवताओं की स्तुति और प्रशंसा करते थे। संकट और शोक के समय उन से सहायता मांगते थे। युद्ध के समय उन को सेनापति जानते थे। जय में उन का गर्व करते थे। उन को वे ऐसे समीपस्थ अनुमान करते थे कि प्रत्येक पारिवारिक कार्य्य में उन की विद्यमानता अनुभव करते थे। उन को निवेदन किये बिना आप भोजन नहीं करते थे। उन के नाम पर सोम वा होओमा-रस ढाले बिना आप नहीं पीते थे। जब कभी ऐसा विचार आता था कि किसी पाप वा अपराध के कारण देवता अप्रसन्न हो गये तो देव-क्रोध दूर करने

के लिये उन के नाम पर बलिदान करते थे। वे उन देवताओं का यहां लों व्यक्तित्वयुक्त कल्पना करते थे कि मनुष्य स्वभाव की पूर्ण भाव उन में भावना करते थे। जैसे सूर्य्य देव उदय होते समय सोने के रथ पर सवार होके निकल आता है। अपनी प्रिया ऊषा देवी को आलिंगन करने के लिये उस के पश्चात् दौड़ता है। ऊषा उस के आगे आगे भागती जाती है। अन्त में शीघ्रगामी सूर्य्य देव उस को पकड़ ही लेता है। ऊषा अपने प्रीतम के स्पर्श से तुरन्त प्राण त्याग देती है। इत्यादि।

उन के धर्म संबंधीय रीति—आर्य्य जाति की भिन्न भिन्न शाखाओं के प्राचीन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उन की सब से बड़ी और पवित्र रीति बलिदान था। यह रीति केवल आर्य्यों ही में नहीं परन्तु प्राचीन काल की समस्त जातियों में प्रचलित थी। आर्य्यों की प्राचीन पुस्तकों में पशु बलि का बहुत वर्णन है। देवताओं को संतुष्ट करने के लिये सोम वा हाओमा का रस या और प्रकार के नशीली वा बेनशीली वस्तु चढ़ाते थे। इन के उपरान्त घृत और जवादि से भी होम करते थे।

चतुर्थ अध्याय ।

हिन्दु और पार्सी ।

ऐक्य–ऐसा जान पड़ता है कि जब आर्य्य जाति की भिन्न भिन्न शाखा अपने आदि देश से अलग हो गई तो हिन्दु और पार्सी जाति के पुरुखे कुछ काल लों एकत्र वास करते रहे । क्योंकि इन दोनों जातियों में बहुत सी बातों में जिस प्रकार ऐक्य दृष्टि होता है वैसा औरों में देखने में नहीं आता है जैसे:–

१. उन का जातीय नाम–पार्सियों ने अपने तई ऐर्य्य कहा वैदिक ऋषियों ने अपने तई अर्य्य और आर्य्य कहा ।

२. उन की भाषा–इस के उदाहरण:–

ज़न्द	संस्कृत	अर्थ
दषिणो	दक्षिण	दहिना
कष	कक्ष	बग़ल
पर्स्ति	पृष्ठ	पीठ
फस्तान	स्तन	कुच
परेशाव	पार्श्व	पांजर
श्रोणि	श्रोणि	कमर
ज़नु	जानु	घुटना
मनो	मन	मन
जंघ	जंघा	जांघ
निवैधयेमि	निवेदयामि	निवेदन करता हूं

अन्द	संस्कृत	अर्थ
स्तोमि	स्तोमि	स्तुति करता हूं
ज़्वयेमि	ह्वयामि	आह्वान करता हूं
आफ्रीणामि	प्रीणामि	प्रीति करता हूं
नेमो	नमः	नमस्कार

इत्यादि ।

३. देवता—इस के उदाहरण:—

आवस्तिक	वैदिक
अहुर मज़्द के गुण	वरुण के गुण
मिथ्र	मित्र
वेरेथ्रघ्न	वृत्रघ्न
अरमैति	अरमति
ऐर्य्यमन्	अर्य्यमन्
यिमो	यम
विवनघाओ	विवस्वान्
नैर्योशंघो	नराशंस
वयो	वायु
हाओमा	सोम
हुख्रतुस्	सुक्रतुस्
थ्रित वा थ्रेतन	त्रित वा त्रैतन

४. देवताओं को पदवी—पार्सियों ने अपने सब से बड़े देवता अहुर मज़्द को अहुर पदवी दिई। ऋग्वेद के ऋषियों ने अपने बड़े बड़े देवताओं को असुर नाम से पुकारा। अहुर और असुर एक ही शब्द है। ऋग्वेद में इन्द्र, वरुण, मरुत, प्रजापति, त्वष्टा अग्नि, सरस्वती,

सविता, पर्जन्य इत्यादि देवताओं को असुर पद दिया गया। इस का प्रमाण देखो १। २४। १४॥ १। ५४। ३॥ १। ६४। २॥ १। ११०। ३॥ २। २७। १०॥ २। २८। ७॥ ४। ५३। १॥ ५। १२। १॥ ५। १५। १॥ ५। २७। १॥ ५। ४२। १॥ ५। ४९। २॥ ५। ६३। ३, ७॥ ५। ८३। ६॥ ७। ३६। २॥ ७। ६५। २॥ ७। ९६। १॥ ८। ४२। १॥ ८। ९०। ६॥ १०। १०। २॥ १०। ५५। ४॥ १०। ९६। ११॥ १०। ९९। २, १२॥ १०। १०५। ११॥

५. विशेष मनुष्यों के नाम—वैदिक अंगिरा आवस्तिक अंग्रो है। हिन्दुओं की किसी किसी पुस्तक में कृशाश्व नामक एक बीर पुरुष का वर्णन है। इस कृशाश्व का नाम और गुण आवस्तिक बीर केरे शाश्प से मिलते हैं। वेद में उशना नामक एक पुरुष का नाम है जिस को पुराणों में शुक्राचार्य्य और तैत्तिरीय संहिता में कवि उशना कहा है। इस को आवस्ता के वहरम्यास्त में कविउश और खुर्द आवस्ता में उशिनेमो वा उश्नाक कहा है। वेद में इष्टाश्व नामक एक पुरुष का प्रसंग है जिस को कोई कोई विद्वान आवास्तिक विस्ताशूप समझते हैं। विस्ताशूप को साधारण फारसी भाषा में गुश्तास्प भी कहते हैं। परन्तु यह शब्द कभी कभी "ये" ى से भी लिखा जाता है जैसा یستاسپ इस्तास्प। यह इस्तास्प शब्द वैदिक इष्टाश्व से मिलता है।

६. विशेष स्थानों के नाम—आवस्तिक हप्तहेन्दु वैदिक सप्तसिन्धु। आवस्ता के वर्णनानुसार अहुर मज़द के सिरजे हुए दसवें भूखंड का नाम हरक़ैती है। वेद में

इस देश के नाम से एक नदी का नाम सरस्वती रक्खा गया जो स्थानेश्वर के समीप अब लों वर्त्तमान है। आवस्ता में अहुर मज़द के रचे हुए छठवें भूखंड का नाम हरोयु है। वेद में यह नाम भी हिन्दुस्थान की एक नदी को दिया गया जिसे सरयू कहते हैं।

७. संस्कार—वैदिक ऋषि दो लकड़ियों को घिसकर आग बनाते थे। पार्सियों में भी यही रीति प्रचलित थी। हिन्दु अग्निहोत्री अपने घर में पवित्र अग्निस्थापन करते थे। पार्सी लोग आज तक अपने घर में पवित्र अग्नि की रक्षा करते हैं। हिन्दु बिवाह के समय अर्य्येमन देवता का मंत्र पढ़ते हैं। पार्सी भी बिवाह के समय ऐर्य्यमन देवता का मंत्र पढ़ते हैं। आवस्ता में अथ्रव और जओता नामे दो प्रकार के पुरोहित पाये जाते हैं जो वेद के अथर्वन और होता नाम पुरोहितों से मिलते हैं। पार्सियों के क्रिया कर्म्म में दूध मक्खन मांस फल हाओमा भेड़ के रोम पत्तों के गुच्छे और पकवान का व्यवहार दृष्टि होता है। हिन्दु भी अपने क्रियाकर्म्म में ऐसी ऐसी बस्तुओं का व्यवहार करते हैं। पार्सियों की इजेश्ने नाम क्रिया में वैदिक ज्योतिष्टोम यज्ञ की प्राय समस्त क्रिया देखने में आती है। पार्सियों के आफ्रिगान, दरुन और गाहानवर नाम संस्कार वैदिक आप्री, दर्श-पौर्णमास और चतुर्मास्य यज्ञों से मिलते हैं। आवस्तिक हाओमा का चढ़ावा और वैदिक सोम का चढ़ावा दोनों एक रूप हैं। आवस्तानुसार हाओमा और वेदानुसार सोम एक बूटी का नाम है। दोनों शास्त्रानुसार वह बूटी रंग में सुनहरी, पीने में मादक और रोग दूर

करनेवाली है। दोनों शास्त्रानुसार वह एक देवता है। विशेष नियम से उस का रस निकालना पड़ता और मंत्र से पवित्र करके पीना पड़ता। दोनों शास्त्रानुसार उस के पीने से बल और अनन्त जीवन की प्राप्ति होती है। हिन्दु विशेष वय में लड़कों के गले में जनेऊ डालते हैं। पार्सी भी ऐसे ही करते हैं। दोनों जातियों में शुद्ध के लिये गोमूत्र का व्यवहार दृष्टि होता है। पार्सी अपने देवताओं की मूर्त्ति नहीं बनाते और उन के लिये कोई मन्दिर भी स्थापन नहीं करते। वैदिक ऋषि भी अपने देवताओं की न मूर्त्ति बनाते थे और न उन के लिये मन्दिर स्थापन करते थे। पार्सियों में जाति विचार नहीं है। वेद के प्राचीन मंत्रों में भी जाति भेद का पता नहीं मिलता है।

अनैक्य—यद्यपि पार्सी और हिन्दुओं में अनेक बातों में ऐक्य दृष्टि होता है तथापि कई ऐसी बातें भी हैं जिन में उन का परस्पर अनैक्य और विरोध देखने में आता है जैसे:—

१. देव-निन्दा—ऋग्वेद में जैसा इन्द्र वरुणादि देवगण के सम्मानार्थ असुर शब्दका व्यवहार हुआ है वैसा उन देवताओं के शत्रुगण के असम्मानार्थ भी असुर शब्द का प्रयोग हुआ है। सो दो विरुद्ध अर्थों में असुर शब्द को प्रचलित देखकर वेद विद्वान बहुत आश्चर्य्य करते हैं। इधर जन्द आवस्ता में "दएवो" वा देव शब्द कहीं तो संभ्रमार्थ और कहीं तो असंभ्रमार्थ प्रयुक्त हुआ है। परवर्त्ती काल में हिन्दु केवल देव को पूजते और असुर को घृणा करते दृष्टि होते हैं। इधर परवर्त्ती काल के पार्सी

केवल असुर को पूजते और देव को घृणा करते देखने में आते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इसी कारण फारसी और उरदू भाषा में देव (वा देओ) शब्द से दुष्टात्मा वा बदरूह समझी जाती है। ऐसे विपरीत व्यवहार पर सोच विचार करने से अनुमान होता है कि पहिले दोनों जाति दोनों नामों से अपने उपास्य की उपासना करती थीं पश्चात् किसी विशेष कारण से एक जाति ने असुरोपासना और दूसरी जाति ने देवोपासना को अवलम्ब किया। वैदिक देवताओं की असुर पदवी हम पहिले दिखा चुके। सो उस की पुनरावृत्ति निष्प्रयोजन है। इधर आवस्ताके यश्न नाम पर्ब्बके बारहवें अध्याय में यों लिखा है कि "मैं देवों की उपासना छोड़कर अहुर मज़्द की उपासना में लग जाता हूं। मैं देवों का बैरी होकर अहुर का उपासक और अमेष स्पेन्त का पूजक बनता हूं"। इस से प्रगट होता है कि पार्सी पहिले देवों के उपासक तो थे परन्तु किसी कारण से देवों को छोड़कर अहुर के उपासक बन गये।

[यहां पर इतना कहना उचित है कि यद्यपि वेद में असुर शब्द का संभ्रमार्थ व्यवहार हुआ तथापि वैदिक पंडितों के भिन्न साधारण हिन्दु इस बात को नहीं जानते हैं। उन का साधारण विचार यह है कि देव और असुरों में एक ऐसा युद्ध हो रहा है जो अब लों समाप्त नहीं हुआ। प्रतिवर्ष बङ्गदेश में जो दुर्गापूजा होती है उस से भी यही बात प्रगट किई जाती है। दुर्गा-प्रतिमा इस रीति से बनाते हैं कि वह एक सिंह पर खड़ी होकर अपने दस हाथों में दस प्रकार के अस्त्र

धारण पूर्वक महिषासुर के साथ संग्राम कर रही है। हिन्दुओं के साधारण विश्वासानुसार विष्णु के बारंबार अवतार धारण करने का अभिप्राय भी असुरों का नाश करना है। कहते हैं कि येही असुर कभी दैत्य और कभी राक्षस बनकर धर्त्ती पर जन्म लेते और धर्त्ती को सताते रहते हैं। यों उन का सब से बड़ा असुर सत्य-युग में हिरण्यकशिपु, त्रेतायुग में रावण और द्वापर-युग में कंस नाम से उत्पन्न हुआ और विष्णु के तीन अवतारों अर्थात् नृसिंह राम और कृष्ण के हाथ से मारा गया।

हिन्दु जिस प्रकार देवों का आदर और असुरों का अनादर करते हैं पार्सी उसी प्रकार अहुर का सन्मान और देवों का असन्मान करते हैं। उन के विश्वासानु-सार अहुर मज़्द सब से प्रधान उपास्य है। जगत के समस्त उत्तम पदार्थ उसी से उत्पन्न हुए। परन्तु उस की उत्तम सृष्टि को बिगाड़ने के लिये पाप पुरुष अंग्रोमैन्युस ने समस्त बुरे पदार्थों को सिरजा। अहुर मज़्द ने अमेषस्पेन्तों को उत्पन्न किया। अंग्रोमैन्युस ने देवों को सिरजा। अंग्रो का अर्थ बुरा और मैन्युस का अर्थ मन। अंग्रोमैन्युस का अर्थ वह जिस का मन बुरा है अर्थात् शैतान। सो स्पष्ट प्रतीत होता है कि पार्सियों के मतानुसार देव यहां तक घृणित हैं कि उन की उत्पत्ति भी अंग्रोमैन्युस अर्थात् शैतान से हुई।]

२. हाओमा वा सोम की निन्दा—सोम यज्ञवेद की एक बड़ी रीति है। आवस्ता मे भी हाओमा की बड़ी

प्रशंसा है। परन्तु उसी आवस्ता में ज़रथुस्त्र ने हाओमा की बड़ी निन्दा किई (यश्न ३२ । ३ । ४८ । १०)। कोई २ विद्वान अनुमान करते हैं कि यहां पर ज़रथुस्त्र ने ख़मीरी वा मादक हाओमा की निन्दा किई।

३· श्रेष्ठ पुरुषों की निन्दा—वेद में कवि और उशिज नाम विद्वानों का प्रसंग है। आवस्ता में इन विद्वानों की निन्दा पाई जाती है। फिर आवस्ता में ज़रथुस्त्र के कई सहायक हैं जिन की पदवी मगवा है। मगवा शब्द संस्कृतमें मघवा है। कीलाकार लेखों में इस शब्द का नाम मघुश है। यूनानी और लातिनी ग्रन्थकर्त्ता इन सज्जनों को मेजि कहते थे जिन को अंगरेजी में मेजियान् और उरदू में मजूसी कहते हैं। मगवा वा मजूसी लोगों के कई एक बीर और राजा कवा पदवी रखते थे। जैसे कवा विस्ताशूप, कवा हुस्रव, कवा उश। वेद में इन के मित्रों को कवा-सख कहा। वैदिक ऋषियों ने मघवा और इन कवासखों को इन्द्र के बैरी और इन्द्र को इन का वधकारी वर्णन किया। देखो ऋग्वेद म० ५ सू० ३४ ऋ० ३।

ऐसी अनबन की बातों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यदिच पार्सी और हिन्दु दोनों जाति के पुरखे पहिले एक ही जाति थे एकत्र रहते थे और एक ही सामाजिक और धर्म्मनैतिक रीति नीति पर चलते थे तथापि पीछे उन के बीच में परस्पर बहुत बैर हो गया था और इसी विरुद्धता के कारण एक दूसरे से पृथक होकर दो जाति बन गये हैं।

विरुद्धता का कारण—इस विरुद्धता का कारण निरूपण करना सहज नहीं है। आवस्ता के वर्णन पर सोच विचार करने से ऐसा बोध होता है कि धर्म्म सुधारने की चेष्टा और कृषिकार्य्य में उत्साह देना इस जाति विरोध का कारण है। क्योंकि आवस्ता में देवों की निन्दा और कृषि कार्य्य का उत्साह बहुत स्थलों में एकत्र दृष्टि होते हैं। बरन अनेक स्थलों में देवों को कृषि के बैरी कहा है। जैसे बन्दिदाद का तीसरा अध्याय इन्हीं बातों से पूर्ण है। इस प्रकार का सुधार एक ही दिन में या एक ही पुरुष से होना संभव नहीं। आवस्ता के पढ़ने से जान पड़ता है कि ज़रथुस्त्र सब से बड़ा सुधारनेवाला था। लिखा है कि "ज़रथुस्त्र ने अहुर मज़्द से पूछा कि हे सृष्टिकर्त्ता मज़्द यस्न धर्म्म की उन्नति किस प्रकार से किई जायगी? अहुर मज़्द ने उत्तर दिया हे ज़रथुस्त्र स्पितम् जव की खेती करना ही उस की उन्नति का हेतु है"। (देखो आवस्तान्तर्गत वन्दिदाद ३। ३०।) इस बातचीत से जान पड़ता है, कि आर्य्य लोग अपने जातीय कर्म्म कृषि कार्य्य में अचेत हो गये थे और उन में से बहुतेरे अपने पड़ोसी तुरानियों की नाईं चरवाही करने लग गये थे। ज़रथुस्त्र ने चाहा कि आर्य्य लोग अपने पैतृक कार्य्य खेती बारी में लगे रहें और, यों अपना प्राचीन आर्य्य नाम न खोवें।

ज़रथुस्त्रीय सुधार का एक और विषय जो जाना जाता है सो मद्यपान था। हम पहिले कह आये कि ऋग्वेद और आवस्ता में सोम वा हाओमा की अत्यन्त प्रशंसा किई गई। प्राचीन आर्य्य अपने देवताओं को सोम-

रस चढ़ाते थे श्रीर आप भी आनन्द से पीते थे। ऐसा बोध होता है कि वे मादक सोमरस का व्यवहार करते थे। क्योंकि जरथुस्त्रीय शिक्षा में मादक हाश्रोमा की निन्दा देखने में आती है। (देखो आवस्ता यश्न ३२।३ : ४८।१०।) ऐसा जान पड़ता है कि जरथुस्त्र श्रीर उस के साथियों की शिक्षा से बहुत से लोग ऐसे हाश्रोमा का व्यवहार करने लग गये थे जिस से नशा या मत्तता नहीं होती थी। इधर दूसरे पक्ष के लोग न खेती करने श्रीर न मादक सोमरस छोड़ने को राजी हुए। सो दोनों पक्षों में फूट पड़ गई श्रीर अन्त में बहुत युद्ध विग्रह के अनन्तर दूसरे पक्ष के लोगों अर्थात हमारे बापदादों को अपना देश छोड़कर हिन्दुकुश उत्तीर्ण हो इस देश में आकर आश्रय लेना पड़ा* ।

---

* इस विषय में स्वनाम-ख्यात हिन्दु विद्वान डाकटर राजेन्द्रलाल मित्र महाशय यों लिखते हैं :—

"The relation of the agriculturists with the shepherds was not always of the most peaceful kind Their respective habits of life were such as to make them antagonistic to each other. The shepherds had the most frequent opportunities of indulging in animal food and fermented drink, and they did not fail to make the most of these opportunities. The agriculturists were necessarily driven to depend principally on the produce of their fields, and they subsisted on vegetable diet. The former thought that their gods were best served by offerings of sanguinary sacrifices and libations of intoxicating soma; the latter offered the fruits of the earth and unfermented soma to their gods.........Their differnces were heightened by priests and reformers, until they culminated in a religious schism of a most sanguinary character...............How long, these wars lasted, it is impossible now, to ascertain,

ऋग्वेद के पढ़ने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस सुधार के विरुद्ध पक्ष हिन्दु जाति के बापदादों का बड़ा देवता इन्द्र बहुत मांस खानेवाला और सोम पीनेवाला समझा जाता था (देखो ऋग्वेद म० ५ सू० २९ ऋ० ७ और ८। म० ६ सू० १७ ऋ० ११। म० ६ सू० ३९ ऋ० १। म० १० सू० २७ ऋ० २। म० १० सू० ८६ ऋ० १३ इत्यादि।) संभवतः इसी लिये सुधार के पक्षवालों ने अर्थात पार्सियों के बापदादों ने इन्द्र को उस के साथियों समेत नरक निवास में भेज दिया और उन को अंग्रोमैन्युस के मंत्री ठहरा दिया। वे इन्द्र और उस के दो साथियों को अपने देश से यों निकालते हैं "मैं अंद्र, शौर्व और देव नाओंघैथ्य को इस घर से इस गांव से इस नगर से इस देश से इस पवित्र अखंड जगत से निकाल देता हूं'। (देखो जन्द आवस्ता दसवां फर्गर्द।) अंद्र--वैदिक इन्द्र। शौर्व--वैदिक शर्व। नाओंघथ्य--वैदिक नासत्य।

---

but it is unquestionable that they brought on the one hand the establishment of the Zoroastrian religion with Ahura Mazda or chief Asura for god and a host of Ahuras of inferior rank as ministers, receiving fruits and unfermented soma from their votaries as offerings, and on the other the expulsion of the bulk of the shepherd tribe from Afghanistan with their pantheon headed by Indra and the cultus which required animal sacrifices and libations of fermented liquors. These latter are the ancestors of the Brahmanic Aryans. In India they found a congenial, peaceful home.......It may offend the self-love of the Brahmans to be told that the celestial wars resulted in the final overthrow of Indra, or, in other words, that their ancestors were expelled from their home by the followers of Asuras."—Indo Aryans, Article XX, "Pimitive Aryans."

इन बातों पर सोचने से स्पष्ट बोध होता है कि मादक सोमरस का व्यवहार भी इस झगड़े का एक कारण था।

इसी विग्रह को परवर्त्ती काल के हिन्दुओं ने देवासुर संग्राम नाम से प्रसिद्ध किया। इसी युद्ध के कारण असुर शब्द का व्यवहार जो संभ्रमार्थ कियाजाता था असंभ्रमार्थ किया गया। पौराणिक हिंदु देवासुर युद्ध का कारण यों बताते हैं कि समुद्र मन्थन से सुधा वा अमृत की उत्पत्ति हुई। देवताओं ने छल से असुरों को अमृत पीने से बंचित रक्खा। इस पर देवता और असुरों में संग्राम आरंभ हुआ। हिन्दु चंद्रमा को भी अमृत वा सुधास्वरूप मानते हैं और चंद्रमा का एक दूसरा नाम सोम भी बताते हैं। सो वैदिक सोमरस पुराणों में अमृत वा सुधा कहलाता है। देवगण इस के पीने की बड़ी कामना रखते थे। यह बात कि देवताओं ने असुरों को धोके से अमृत पीने नहीं दिया हिंदुओं की मन गढ़ंत है। असल बात तो यह है कि असुर के उपासक पार्सियों के पूर्व पुरुषों ने देवों के उपासक हिन्दुओं के पूर्व पुरुषों के सोम वा अमृतपान की विरुद्धता किई और इसी लिये दोनों में युद्ध हुआ।

हम पहिले दिखा आये कि आवस्तिक विस्ताश्प वैदिक इष्टाश्व है। संभवतः विस्ताश्प जरथुस्त्रीय सुधार का एक प्रसिद्ध अगुवा था। इस के नाम से पश्चातकाल में दारा बादशाह के पिता गुश्तास्प का नाम रखा गया। संभवतः जरथुस्त्रीय मतों को प्रचार करने के लिये विस्ताश्प ने अस्त्र को भी काम में लाया होगा।

हिन्दुओं के पुरुखे अपने अगुवों की बड़ाई में गर्व से कह रहे हैं कि :—

किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नृन् ।

ऋग्वेद म० १ । सू० १२२ । ऋ० १३ ।

अर्थ—जगत के शासनकर्ता इष्टाश्व और इष्टरश्मि हमारे आश्रय देनेवालों का क्या कर सकते हैं ।

इष्टाश्व तो विस्ताश्प है परन्तु ज़रथुस्त्रियों में इष्ट-रश्मि कौन था ठीक जाना नहीं जाता है । (देखो डाकटर कृष्णमोहन वंद्योपाध्याय कृत Arian Witnees, P. 37 और उद्धृत ऋचा का टीका बाबू रमेशचन्द्रदत्ता-नुवादित बांला ऋग्वेद ।)

अनैक्य का परिणाम—वैदिक ऋषि गर्व करें तो करें परन्तु ऐतिहासिक सच्चाई तो यह है कि ज़रथुस्त्रीय अगुवों के हाथ से हमारे पितृगण को हार मानना पड़ा और प्राचीन स्वदेश को छोड़ हिन्दुकुश पर्वत उत्तीर्ण होके इस देश में आकर एक नया बासस्थान स्थापन करना पड़ा । यदि कोई कहे कि उन के परास्त होके इस देश में आके बास स्थापन करने का क्या प्रमाण है तो हम इस के उत्तर में यों कह सकते हैं :—

१. यदि पराजित न होते तो वे अपने देश को न छोड़ते । हिंदुओं की पौराणिक कहानियों में इस बात का प्रसंग है कि असुरों से परास्त होकर इन्द्र अपने साथियों के साथ स्वर्ग से निकाला गया था । हम पूछते हैं कि इस पौराणिक कहानी का मूल क्या है । हम कहते हैं कि इन्द्र वृत्रासुर से तो नहीं परन्तु पार्सियों

के पुरखों के हाथ से निकाला गया था। परवर्त्ती काल में पौराणिक लोगों ने भूल से इस पराजय का वृत्तान्त इन्द्र और वृत्र के युद्ध के वर्णन में बढ़ा दिया।

२. पार्सियों के पुरखे इन्द्र को अपने देश से निकाल रहे हैं। उस के साथ शर्व और नासत्य नामक और दो देवों को भी। जैसा पहिले वर्णन हो चुका "मैं अन्द्र, शौर्व और देव नाओंघैथ्य को इस घर से इस गांव से इस नगर से इस देश से इस पवित्र अखंड जगत से निकाल देता हूं"।।

३. वैदिक ऋषि प्राचीन देश से निकाले हुए इन्द्र को बुला रहे हैं :-

अनुप्रत्नस्यौकसो हुवे तुवि प्रतिं नरम्।
यं ते पूर्वं पिता हुवे।

ऋग्वेद म० १ सू० ३० ऋ० ९।

अर्थ—इन्द्र बहुत लोगों के पास जाता है। पुरातन आवास से मैं उस पुरुष को आह्वान करता हूं जिस को पिता ने पहिले आह्वान किया था।

यहां पर पिता का अर्थ ऋषि के प्राचीन पूर्व पुरुष, जिन्हों ने इन्द्र को अपने पैतृक बास भूमि से बुलाया था। (देखो डाकटर कृष्णमोहन वंद्योपाध्याय कृत Arian Witness. P. 39 और बाबू रमेशचन्द्रदत्त के बांला ऋग्वेद का टीका।)

४. ऐसा न हो कि इन्द्र शत्रुओं के साथ मिल जाय सो ऋषि कह रहे हैं :-

मा नो अति ख्य आ गहि ।

ऋ० म० १ सू० ४ ऋ० ३ ।

अर्थ—हम को छोड़के (औरों में अपने को) प्रकाश मत कीजियो (हमारे ही पास) आ ।

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो ।

ऋ० म० १ सू० ४ ऋ० ९ ।

अर्थ—हे शतक्रतु तू उस युद्ध में योद्धा है हम तुझ को अन्नवान करते हैं ।

अर्थात् हम तुझ को खाने को देते हैं तू हमारे ही बीच में रह । (See Arian Witness. P. 39)

५. वैदिक ऋषि अग्नि को पुकार रहे हैं :—

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवां इहा वह ।

ऋग्वेद म० १ सू० १२ ऋ० १० ।

अर्थ—हे दीप्यमान पावक अग्नि तू हमारे लिये देवगण को यहां ले आ ।

"देवां इहावह" देवगण को यहां ला । यहां कहां ? सायनाचार्य्य अपने भाष्य में इस का अर्थ करते हैं "इह देव यजन देशे" अर्थात् उस देश में जहां देवताओं की पूजा होती है । अब प्रश्न यह है कि यह "देव यजन देश" कौन सा देश है ? पार्सियों ने देवों को तो निकाल दिया । हां "यहां" शब्द का आशय जो देव-यजन-देश है सो वही देश है जहां असुरों की तो नहीं, परन्तु देवताओं की पूजा होती है अर्थात् वर्त्तमान हिन्दुस्थान । भावार्थ यह है कि ऋषि अग्नि से प्रार्थना करते

हैं कि वह देवताओं को प्राचीन देश से जहां अब उन की निन्दा होती है यहां अर्थात नये देव-स्थान में ले आवे।

इन बातों पर विचार करने से स्पष्ट प्रगट होता है कि (१) पार्सी और हिन्दुओं के बापदादों में युद्ध हुआ। (२) और अन्त में हिन्दुओं के बापदादे प्राचीन देश को छोड़कर एक नये देश में आ बसे। यदि वे पराजित न होते तो अपने देश को क्यों छोड़ते ?

शायद इस बात पर कोई कहे कि यदि यह माना जाय कि उत्तर भारत में जिसे मनुजी आर्य्यावर्त्त कहते हैं दोनों जाति के पुरखे एकत्र बास करते थे और इसी उत्तर भारत में पूर्वोक्त युद्ध विग्रह हुआ और यहीं से परास्त होकर पार्सियों के पुरखे हिन्दुकुश उत्तीर्ण होके इरान देश को भाग गये तो इस सिद्धान्त में क्या आपत्ति हो सकती है ?

इस के उत्तर में इतना कहना बस होगा कि यदि ऐसा ही होता तो वैदिक ऋषि इन्द्र को पुरातन आवास से न बुलाते। यदि यही देश पुरातन आवास है तो ऋषि उसे और कौन से नये देश को बुला ले जाते हैं ? अग्नि को पुकारते समय "यहां" शब्द का व्यवहार हुआ। यदि वह और उस के साथी इसी देश में थे तो "यहां" शब्द के व्यवहार का क्या प्रयोजन था ?

सप्तसिन्धु—हम पहिले कह आये कि कोई कोई विद्वान अनुमान करते हैं कि सप्तसिन्धु के आशय जो सात नदियां हैं सो सिन्धु नदी, पंजाब की पांच नदियां

(सतलज, बियास, रावी चेनब झिलम) और सरस्वती नदी हैं। सो उन के विचारानुसार सरस्वती से सिंधु लों जो भूखंड फैला हुआ है वही सप्तसिंधु देश है। सरस्वती नदी कुरुक्षेत्र वा स्थानेश्वर के निकट दृष्टि होती है। सो इस सिद्धान्तानुसार वर्त्तमान पञ्जाब ही प्राचीन सप्त सिंधु है।

कोई कोई सिद्धान्त करते हैं कि यही सप्तसिंधु देश ऋषियों का स्वदेश है और यही वह रण-क्षेत्र है जहां हिन्दु और पार्सियों के पुरखे पूर्वोक्त महासंग्राम में लिप्त हुए और यहीं से दो जाति पृथक होकर एक जाति हिन्दुकुश पार होकर इरान देश में जा बसी और दूसरी जाति क्रमशः पूर्व की ओर बढ़कर समस्त उत्तर भारत में फैल गई और यों यह समस्त देश पीछे आर्य्यावर्त्त नाम से प्रख्यात हुआ। उन की समझ में यही पंजाबी सप्तसिंधु आवस्तिक हप्तहेन्दु है।

सप्तसिंधु और हप्तहेन्दु जो एक ही देश के संस्कृत और जन्द नाम हैं इस बात में हमारा कुछ भी संदेह नहीं है। परन्तु यह देश कहां पर अवस्थित था और इसी देश में दोनों जाति के पुरखे एकत्र बास करते थे या नहीं यह बात अनुसंधान योग्य है।

ऋग्वेद में सप्तसिंधु का जिस प्रकार वर्णन है उस से बहुत स्पष्ट नहीं होता कि सप्तसिंधु से कौन सी नदियां समझनी चाहिये। ऋग्वेद में सिंधु नदी की अत्यन्त प्रशंसा है परन्तु स्पष्ट जान नहीं पड़ता कि ऋग्वेद की सिंधु नदी और वर्त्तमान सिंधु नदी एक ही है। ऋग्वेद के दसवें मंडल के मंत्रों को वर्त्तमान काल के वेदज्ञ विद्वान नये समझते हैं। दशवें मंडल में सिन्धु नदी का जो वर्णन

है उस से तो वह वर्त्तमान सिंधु नदी ही जान पड़ता है। परन्तु दूसरे मंडल के पंन्द्रह वें सूक्त के छठवें ऋचा में जो सिंधु का प्रसंग है सो उत्तर वाहिनी है।

सोदंचं सिंधु मरणात्।

अर्थ—उस (इन्द्र) ने सिंधु को उत्तर वाहिनी किया।

हर कोई जानता है कि वर्त्तमान सिंधु नदी की गति दक्षिणमुखी है जो अरब समुद्र में जा गिरती है। सो वर्त्तमान सिंधु को हम किसी प्रकार से ऋग्वेद के दूसरे मंडल की सिंधु नहीं कह सकते हैं। वह कोई ऐसी नदी होगी जो दक्षिण से निर्गत होकर उत्तर की ओर बहती थी। डाकृर कृष्णमोहन वंद्योपाध्याय महाशय "आर्य्य साक्षी" (Arian Witness) नाम पुस्तक में यूनानी ग्रन्थकर्त्ताओं के मतानुसार सिन्दोन नामक एक नदी का प्रसंग करते हैं जो कास्पियन सागर में गिरती थी। (See Arian Witness P. 28.) उक्त महाशय ने उस नदी की गति के विषय में कुछ नहीं कहा। सो हम भी इस बात पर जोर नहीं देते कि यूनानी सिन्दोन और वेद मंत्रों की प्राचीन सिंधु निश्चय एक ही नदी है। तौभी मध्य एशिया में इस प्रकार नाम युक्त नदी के प्रसंग सुनने से मन में विचार होता है कि यद्दिच आज कल ठीक ठीक निर्देश करना दुश्वार है तथापि वेदोक्त उत्तर वाहिनी सिंधु किसी मध्य एशियास्थ नदी ही का नाम होगा। संभवतः उसी उत्तर वाहिनी प्राचीन सिंधु नदी के नाम से ऋग्वेद के दसवें मंडलस्थ दक्षिण-वाहिनी नवीन

सिंधु नदी का नाम रखा गया होगा। जब हिन्दु जाति के पुरखे इस देश में आकर अवस्थित हुए तो इसी रीति से मध्य एशियास्थ सप्तनदी के नाम से हिंदुस्थान के सप्तनदी के नाम रखे गये होंगे जिन का वर्णन ऋग्वेद के नये मंत्रों में दृष्टि होता है। सो यद्यपि वर्त्तमान पंजाब को सप्तसिंधु कहना ही हो तो उस को नया सप्तसिंधु कहना चाहिये जो मध्य एशियास्थ सप्तसिंधु नाम किसी प्राचीन भूखंड के नाम से प्रख्यात किया गया होगा।

फिर एक और बात विचार योग्य है। कुरुक्षेत्र के निकटस्थ सरस्वती नदी और उस के तटवर्त्ती भूभाग नये सप्तसिंधु के अन्तर्गत है। किन्तु ज़न्द आवस्ता में सरस्वती (ज़न्द हरक़ैती) हप्तहेन्दु के अन्तर्गत नहीं है। आवस्तानुसार हप्तहेंदु और हरकैती दो पृथक देश हैं। उन के विचारानुसार अहुर मज़्द ने सोलह देश उत्पन्न किये जिन में हरकैती दसवें और हप्तहेन्दु पंद्रहवें स्थानीय थे। सो पंजाबी सप्तसिंधु और आवस्तिक हप्तहेंदु दो पृथक देश बोध होते हैं। यद्यपि एक देश होते तो सरस्वती दोनों के अन्तर्गत या दोनों से बाहर होती। सो अनुमान होता है कि हमारे पुरखे आवस्तिक हप्तहेंदु से निर्गत होकर पंजाबी सप्तसिंधु में आ बसे हैं। वर्त्तमानकाल में भी एक स्थान के नाम से अन्यस्थान का नाम रखा जाता है। जैसे इंगलेंड देश के नाम से अमेरिका में न्यू-इंगलेंड स्थापन किया गया। इयर्क के नाम से न्यू-इयर्क प्रख्यात हुआ। एशियाकोचक के प्राचीन नगर फिलाडेल्फिया के नाम से अमेरिका के

फिलाडेलफिया नगर का नाम रखा गया। सो मध्य एशियास्थ हप्तहेंदु नाम किसी भूभाग के नाम से हिन्दुस्थान के सप्तनदी युक्त किसी भूभाग का प्रसिद्ध होना कुछ भी असंभव नहीं है।

आवस्तानुसार अहुर मज़द के रचे हुए सोलह भूखंड के नाम और पर्य्याय यों हैं :—

१. ऐर्य्योनावएजो	९. ख्नेन्तेम्
२. शुघधो	१०. हरकैतीम्
३. मौरुस	११. हैतुमेन्तेम्
४. बखधीम्	१२. रघाम्
५. निसारम्	१३. चक्रेम्
६. हरायीम्	१४. वरेणेम्
७. वैकेरेन्तेम्	१५. हप्तहेन्दु
८. उर्वाम्	१६. रंघयास्रो

See Dr John Wilson's Pársí Religion, P. 294.

इस पर्य्यायानुसार हप्तहेन्दु पंद्रहवें स्थानीय है। कहते हैं कि पहिला भूखंड ऐर्य्योनावएजो ऐसा पवित्र स्थान था कि उस को सर्व प्रकार अपवित्रता से बचाने के लिये अहुर मज़द ने अवशिष्ट भूभागों को उत्पन्न किया कि मनुष्य उन भूभागों में फैल जायें और ऐर्य्योनावएजो को कलुषित न करें। इस वर्णन से आर्य्य जाति के बिखर जाने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। अर्थात वे ऐर्य्योनावएजो वा आर्य्यबीज से निकले हैं और अन्यान्य देशों में फैल गये। जब आवस्तिक हप्तहेंदु उस आर्य्यबीज से

पंद्रहवें पर्य्याय पर है तो पंजाबी सप्तसिंधु तो कहीं दूर पर होगा। सो आर्य्यों के बिखर जाने और नये नये बासस्थान के स्थापन करने के पर्य्याय में पंजाबी सप्तसिंधु तो एक अत्यन्त नया स्थान होगा।

फिर ऋग्वेद के ऋषि भी इस बात को स्पष्ट स्वीकार करते हैं।

य ऋक्षादंहसो मुचद्यो वार्यात्सप्तसिंधुषु।

ऋग्वेद म० ८ सू० २४ ऋ० २७।

अर्थ जो राक्षसकृत पाप से मुक्त करता है और जो (आर्य्यों को) सप्तसिंधुओं में भेजता है।

इस मंत्र का देवता इंद्र है। यद्यपि हिन्दु आर्य्य सप्तसिंधु ही में थे तो कौन से सप्तसिंधु में इन्द्र उन को भेजता है?

त्रिःसप्तसस्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन् पर्वतां अग्निमूतये।
कृशानुमस्तृंतिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे॥
सरस्वती सरयुः सिंधुरूर्मिभिर्महो महीरवसायंतु वक्षणीः।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो घृतवत् पयो मधुमन्नो अर्चत॥

ऋग्वेद म० १० सू० ६४ ऋ० ८। ९।

अर्थ—स्रोतवाली त्रिगुनित सात बड़ी नदियां और जल, बर्षा के वृक्ष, पर्वत, अग्नि, कृशानुदेव, तीर मारनेवाले गन्धर्वगण तिष्य, रुद्र, रुद्रों में प्रधानरुद्र, हम आश्रय प्राप्ति के लिये इन सब को पुकारते हैं। सरस्वती सरयु और सिंधु ये नदियां जो महातरंग और स्रोतवाली हैं

हमारी रक्षा करने को आइये। जल भेजनेवाली माता की नाईं ये देवियां हम को घृत और मधु के समान जल दीजिये।

इन ऋचाओं से स्पष्ट प्रमाण होता है कि हमारे पुरखे सात नदी और विशेषतः सिंधु सरस्वती और सरयु से और बन के वृक्ष पर्वतादि हिन्दुस्थान के प्राकृतिक पदार्थों से आश्रय प्रार्थना करते हैं। जब उन्हीं की साक्षी ऐसी स्पष्ट है तो हम किस प्रकार से कह सकते हैं कि वे प्राचीनकाल से सप्तसिंधु वा उत्तर भारत के अधिवासी थे और यहीं पर पूर्वोक्त जातीय युद्ध हुआ।

पञ्चम अध्याय ।

टूंक टांक ।

पूर्व ऋषि और नूतन ऋषि—पंजाबी सप्तसिंधु न प्राचीन हप्तहेन्दु है और न ऋषियों का स्वदेश ही है। इस देश में हमारे ऋषिगण विदेशी थे। अब हम कई एक ऐसी बातों का प्रसंग करना चाहते हैं जिन से प्रगट होगा कि इस देश में आने से पहिले हमारे ऋषिगण कहां कहां बास करते थे अथवा किन किन स्थानों से जानकार थे।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षति॥

ऋ० म० १ सू० १ ऋ० २।

अर्थ—अग्नि पूर्व ऋषियों का स्तुति योग्य था नूतन ऋषियों का भी स्तुति योग्य है। वह देवगण को इस यज्ञ में लावें।

यह पूर्व ऋषि और नूतन ऋषि कौन थे? वेद के आरंभ ही में "पूर्व" और "नूतन" शब्दों के देखने से क्या अनुमान होता है। पूर्व ऋषि निश्चय मध्य एशियास्थ अग्निपूजक प्राचीन आर्य्य और नूतन ऋषि हिन्दुस्थान के नये निवासित आर्य्य थे। सायनाचार्य्य ने पूर्व ऋषियों से भृगु अंगिरादि प्राचीन ऋषि सिद्ध किया। हम पहिले दिखा आये कि अंगिरा और आवस्तिक अंग्रो एक रूप नाम

हैं। हिन्दु भृगु को असुर-गुरु शुक्राचार्य्य का पिता मानते हैं। यदि ज़रथुस्त्रीय लोग असुर उपासक हों तो भृगु एक आवस्तिक महाशय प्रमाण होते हैं। फिर शुक्राचार्य्य का दूसरा नाम उशना अर्थात उश-पुत्र है। इस से यह अनुमान होता है कि भृगु का दूसरा नाम उश होगा। आवस्ता में उश नाम एक पुरुष का नाम पाया जाता है। सो भृगु वा उश एक आवस्तिक ऋषि सिद्ध होते हैं। सो ऋग्वेद म० १ सू० १ ऋ० २ में जो पूर्व ऋषियों का प्रसंग है जिन्हें सायनाचार्य्य ने भृगु अंगिरादि स्वीकार किया वे मध्य एशियास्थ अग्निपूजक आवस्तिक ऋषि जान पड़ते हैं और नूतन ऋषि उन्हीं के सन्तान अर्थात हमारे पितृगण जो हिन्दुस्थान में आकर अवस्थित हुए। ऋग्वेद के इस मंत्र से पता लगता है कि ऋषियों का स्वदेश मध्यएशिया ही में था।

कास्पियान सागर—हमारे पुरखे कास्पियान सागर से जानकार थे और ऐसा बोध होता है कि उन के किसी प्रधान पुरुष के नाम से इस समुद्र का नाम कास्पियान पड़ गया। इस विषय में निम्नलिखित प्रमाण सोचने के योग्य हैं।

१. ऋग्वेद म० १ सू० ६१ ऋचा १५ में स्वश्व नामक एक राजा का प्रसंग है। खुर्दावस्ता में यह नाम हुस्प और यूनानी में कस्प है। तीनों नामों का शब्दार्थ "उत्तम घोड़ा" है। या यों कहो कि वह जो उत्तम घोड़ा रखता है। यूनानी कस्प शब्द से कस्पी नामी एक जाति का नाम हुआ है, जिसे हेरोदोतस ने दारा बादशाह के

सूबों में दो बार गिना। इस लिये कोई कोई विद्वान विवेचना करते हैं कि कस्पी जाति दो भागों में विभक्त थी अथवा इस जाति की दो बस्तियां थीं। इन में से एक बस्तीवालों ने जो इस समुद्र के तट पर रहते थे अपने नाम से इस समुद्र का नाम कास्पियान रक्खा। यदि वैदिक स्वश्व और यूनानी कस्प एकही शब्द हो तो सिद्ध होगा कि हमारे बापदादे एक समय कास्पियान सागर के तट पर बास करते थे।

२· फिर एज्रा की पुस्तक (८ : २७) में कसिफिया नाम एक स्थान का प्रसंग होता है जो मिदिया देश में अवस्थित था। कोई कोई विद्वान विवेचना करते हैं कि पूर्वोक्त कस्पी जाति का मूलांश मिदिया देश में था कसिफिया वा कस्पिया उन्हीं लोगों की बस्ती थी। वहां से पूर्व की ओर बढ़कर कस्पी लोगों ने कास्पियान समुद्र के तट पर एक नयी बस्ती स्थापन किई और उस समुद्र को भी अपने नाम से प्रख्यात किया। अब यद्यपि वैदिक स्वश्व (जन्द हूस्प) और यूनानी कस्प एक ही नाम हो तो हम को यह सिद्धान्त करना पड़ेगा कि हमारे पूर्व पुरुष केवल कास्पियान समुद्र के तट पर ही नहीं बरन मिदिया देश में भी बास करते थे।

३· एज्रा की पुस्तक में जहां पर कसिफिया का नाम आया वहां पर इदू नामक एक प्रधान और "ईश्वर के मन्दिर के लिये सेवकों" का भी प्रसंग हुआ। डाक्टर कृष्णमोहन वंद्योपाध्याय महाशय इब्री शब्द इदू को एक आर्य्य नाम अनुमान करते हैं (See Arian Witness, P. 26.) आस्तर की पुस्तक (१ : १) में जिस

प्रकार इब्री शब्द हदूदू से हन्दु (हिन्दी बैबल में हिंद) लिया गया उसी प्रकार "न" अक्षर का छोड़ देने से संस्कृत इन्दु शब्द भी इब्री भाषा में इदू बन सकता है। सो यदि इदू और इन्दु एक हो तो अनुमान होता है कि कासिफिया से हिन्दु जाति के पुरखों के विदा होने के बहुकाल पश्चात् भी उन के कुछ लोग वहां पर बास करते थे जिन का एक प्रधान इदू वा इन्दु एज्रा के दिनों में कसिफिया में वर्त्तमान था।

४. फिर कासिफिया के वर्णन में जो ईश्वर के मन्दिर के लिये सेवकों का प्रसंग है सो इब्री "मुशरथिम" शब्द का अनुवाद है। "मु" इब्री उपसर्ग है और "इम्" बहुबचन का चिन्ह है। मु और इम् को छोड़ देने से मूल शरथ् शब्द रह जाता है। इब्री शरथ्, जन्द जरथ् और संस्कृत जरत वा जरिता समाकार शब्द हैं और उन का अर्थ यज्ञ के समय का गीत गानेवाला है। बैबल के पुराने धर्म्म नियम के प्राचीन यूनानी अनुवाद को सेप्टुयाजिन्ट वा सत्तरी कहते हैं। उस सत्तरी अनुबाद में भी इस शब्द का अर्थ गानेवाला (ἄδοντας) किया गया (See Arian Witness, P. 25.) सो इन सब बातों पर सोच बिचार करने से ज्ञात होता है कि कासिफिया एक आर्य्य बस्ती थी और एज्रा के समय लों मिदिया देश में वह अपना प्राचीन नाम रखती थी।

५. पहिले वर्णन हो चुका कि विख्यात यूनानी इतिहास लेखक हेरोदोतस ने मादी जाति की एक शाखा को अरिजन्ति अर्थात् आर्य्यबंश कहा। सो मिदिया

देशान्तर्गत कसिफिया में हिन्दु आर्य्य के पितृगण के एकांश का निवास होना कुछ असंभव नहीं है।

६. इस विषय में एक और प्रमाण यह है कि कसिफिया वा कस्पिया शब्द बहुत कुछ संस्कृत काश्यपेय शब्द का समान रूप है। काश्यपेय का अर्थ कश्यप का सन्तान। सूर्य्य देवता की स्तुति में सूर्य्य को काश्यपेय अर्थात् कश्यप का पुत्र कहा जाता है।

जवाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
ध्वान्तारिं सर्वपापघ्नं प्रणतोस्मि दिवाकरम्॥

अर्थ—जवाफुल की नाईं चमकीले काश्यपेय, बड़े ज्योतिवाले, अंधियारे के अरि, सब पाप के नाश करनेवाले दिवाकर को प्रणाम करता हूं।

इस वर्णनानुसार सूर्य्य कश्यप का पुत्र है। ऋग्वेद में सूर्य्य को स्वश्व का पुत्र कहा है जैसे:—

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्रे भूरेरीशानः।
प्रैतशं सूर्य्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः॥

अर्थ—वह अकेला ही (शत्रु जय कर सकता) और नाना प्रकार धन का स्वामी है। उस ने जो स्तोत्र इन से मांगा है वह स्तोत्र उसी को दो। स्वश्व के पुत्र सूर्य्य के साथ युद्ध करते समय इन्द्र ने सोम चढ़ानेवाले एतश की रक्षा किई थी।

सायनाचार्य्य इस ऋचा के भाष्य में लिखते हैं कि स्वश्व नाम एक राजा था। उस ने पुत्र कामना से सूर्य्य

की उपासना किई थी । सूर्य्य आप उस का पुत्र बना । उस के साथ एतश नामक एक ऋषि का युद्ध हुआ था । इन्द्र ने स्वश्व के पुत्र सूर्य्य के साथ युद्ध कर एतश ऋषि को बचाया था जो सोमरस चढ़ाने में बहुत प्रसिद्ध था ।

अब दोनों बातों पर बिचार कीजिये, पौराणिक सूर्य्य का पिता कश्यप और वैदिक सूर्य्य का पिता स्वश्व । इस का सिद्धान्त यही होगा कि पौराणिक कश्यप और वैदिक स्वश्व एक ही पुरुष है । पौराणिक कथानुसार कश्यप की सत्रह पत्नी थीं । जिन में से कई एक के गर्भ से सांप, जंगली जानवर, समुद्र के बड़े जानवर और नागादि उत्पन्न हुए । कोई कोई यूनानी ग्रन्थ-कर्त्ताओं ने कास्पियान समुद्र को ऐसे ऐसे जानवरों के उत्पन्न करनेवाला कहा है (See Arian Witness, P. 18.) ऐसी ऐसी बातों से कश्यप और कस्प भी एक ही बोध होते हैं । वैदिक स्वश्व, ज़न्द ह्रस्प, पौराणिक कश्यप और यूनानी कस्प एक ही नाम हैं । संभवतः इस नाम के किसी राजा ने सूर्य्य की उपासना बहुत फैला दिई होगी, इस लिये वह सूर्य्य का पिता कहलाया होगा । अब इन बातों से स्पष्ट होता है कि हमारे पूर्व पुरुष स्वश्व वा कश्यप के सन्तानगण कास्पियान सागर के तट पर और मिदिया देश में अवस्थिति करते थे ।

७. ऋग्वेद में एक स्थान पर "स्वश्वा सिंधुः" पद आया है (म० १० सू० ७५ ऋ० ८) । इस मंत्र का देवता नदी है । सो सायनाचार्य्य ने स्वश्वा सिंधु का अर्थ उत्तम घोड़ेवाली नदी किया संस्कृत में सिंधु शब्द का साधारण

अर्थ समुद्र है। सो स्वश्व सिंधु का अर्थ पूर्वोक्त विचारानुसार कास्पियान समुद्र भी हो सकता है। यों अनुमान हो सकता है कि वैदिक ऋषि कवित्व पूर्ण कल्पना से प्राचीन पियारा नाम "स्वश्व सिंधु' जो पहिले कास्पियान सागर का नाम था पञ्जाबी नई नदी के लिये भी व्यवहार किया। सो सचमुच जिसे हम यूनानी कस्प शब्द से निष्पन्न कास्पियान समुद्र कहते हैं वह हमारा अपना समुद्र है। उस का नाम स्वश्व सिंधु वा काश्यपेय समुद्र है। हमारे पुरुखे उस के तट पर बास करते थे।

वृत्र की कहानी—ऋग्वेद में इन्द्र के हाथ से वृत्र के मारे जाने का वृत्तान्त बहुत विख्यात है। कोई कोई वेद विद्वान इस कहानी का केवल एक प्राकृतिक रूपक समझते हैं। वृत्र जल का रोकनेवाला है। इन्द्र अपने वज्र से उस का काटकर जल बहा देता है। वे जो इस वृत्तान्त को रूपक समझते हैं उन के विचार में वृत्र का अर्थ मेघ है। मेघ जल को रोक रखता है। इन्द्र वज्र से मेघ को फाड़कर जल बहाता अर्थात् बर्साता है।

वृत्र-वध का वृत्तान्त वेद और आवस्ता दोनों में पाया जाता है। पार्सी यद्यपि इन्द्र नाम से बहुत घृणा करते थे तथापि वेरेथ्रघ्न नाम से बहुत प्रेम रखते थे। यदि वृत्र-वध की कहानी केवल रूपकमात्र मान लिई जाय तो यह भी मान लेना पड़ेगा कि यह रूपक हिन्दु और पार्सियों के पुरुखों के पृथक होने से पहिले उन के पैतृक देश में प्रचलित था। नहीं तो वेद और आवस्ता दोनों में एक ही रूपक का प्रसंग कैसे आ

गया। सो इस वर्णन को रूपक मानो अथवा और कुछ मानो इस से स्पष्ट प्रमाण होता है कि हमारे बापदादे भारतवर्ष से बाहर इरानियों के बापदादों के साथ एकत्र रहते थे।

कोई कोई विद्वान वृत्र-बध-वृत्तान्त को रूपक ही रूपक मानने को राज़ी नहीं हैं। वे इस वृत्तान्त में कुछ न कुछ ऐतिहासिक घटना का चिन्ह पाते हैं। क्योंकि ऋग्वेद में वृत्र वध वृत्तान्त में कितने एक मनुष्य और स्थानों के नाम आते हैं जो असुरिया देश के कीलाकार लेखों में भी दृष्टि होते हैं।

वेद में वृत्र को असुर कहा। यह असुर शब्द असल में असुरिया देश की बोली में प्रचलित था। असुरिया देश के कीलाकार लेखों में चार विशेष अर्थों में असुर शब्द का प्रयोग दृष्टि होता है। (१) देवताओं के लिये। (२) राजा और मान्य लोगों के लिये। (३) असुरिया देश के लिये और (४) असुरिया देश के निवासियों के लिये असुर शब्द का व्यवहार हुआ। असुरीय भाषा से यह शब्द आर्य्य भाषा में लिया गया और पहिले देवतार्थ इस का प्रयोग किया गया। इसी लिये आवस्ता में अहुर शब्द देवतार्थ प्रयुक्त हुआ। ऋग्वेद में भी इसी लिये इन्द्र वरुणादि बड़े बड़े देवता असुर कहलाये। सायनाचार्य्य ऋग्वेद म० १ सू० ३५ ऋ० १० के भाष्य में असुर शब्द का अर्थ "असुरः प्राणदाता" लिखते हैं। कोई कोई आवस्तिक विद्वान अहुर शब्द का अर्थ जीवन युक्त करते हैं। चाहे जीवन देनेवाला हो चाहे जीवन रखनेवाला हो अहुर और असुर दोनों असुरीय असुर

शब्द हैं। संस्कृत में स अक्षर की कमी नहीं सो संस्कृत में असुर शब्द जैसे का तैसा रखा गया। परन्तु ज़न्द भाषा में प्रायः स ह से बदल जाता है इस लिये असुर शब्द अहुर बन गया। पार्सियों के साथ बैर होने से हमारे बापदादों को अहुर शब्द कांटों की नाईं चुभने लगा इस लिये असुर को देव-बैरी और घृणित कह दिया। इधर अपने मन से पुराने संस्कार को पूरा पूरा मिटा देना भी सहज नहीं है। सो हमारे पितृगण अपने प्राचीन संस्कार के अनुयायी अपने देवताओं को भी बारंबार असुर नाम से पुकारते रहे। वेद में असुर शब्द के दो बिरुद्ध अर्थ में प्रयोग होने का यही कारण है। वेद में वृत्र भी असुर है। वृत्र हिन्दु और पार्सी दोनों का बैरी है। सो ज़रथुस्त्रीय मतावलम्बियों के साथ झगड़े के कारण वृत्रासुर बेद में असुर नहीं कहलाया। इस कारण कोई कोई विद्वान अनुमान करते हैं कि वृत्रासुर जलरुद्धकारी मेघ तो नहीं बरन आर्य्यों का साधारण शत्रु असुरिया देश निवासी होगा और असुरिया देश निवासी होने से वह बेद में असुर कहलाता है। ज़न्द आवस्ता और प्राचीन इतिहासों से जान पड़ता है कि असुरियों के साथ मध्य एशियास्थ आर्य्यों का अनेक समय युद्ध विग्रह हुआ करता था। हम पहिले वर्णन कर चुके कि आवस्तानुसार अज़िदहक वा वृत्र ने बाबुल नगर में आर्द्वीशूरा देवी से प्रार्थना किई थी कि उस की आशीस से आर्य्य देश बासियों को नाश करे। इस वर्णन से भी वृत्र असुरिया देशनिवासी सिद्ध होता है क्योंकि बाबुल नगर कभी कभी असुरिया

के शासनाधीन रहा। सो इन्द्र देवता की अगुआई में हमारे बापदादों ने वृत्रासुर के साथ जो संग्राम किया सो उन्हें •असुरिया देश की सीमा तक पहुंचा देता है।

संभव है कि वृत्र की कहानी की इस प्रकार की कोई ऐतिहासिक नेव हो जिसे पीछे से आर्य्य कवियों ने सृष्टि की शोभा के बर्णन में रूपक रूप से प्रयोग किया। चाहे कुछ ही माने ऐतिहासिक वृत्तान्त हो या रूपक बर्णन हो वृत्र की कहानी से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पूर्वकाल में हमारे पुरखे मध्य एशिया में बास करते थे।

वृत्र के मित्र—ऋग्वेद के बर्णनानुसार इन्द्र देवता केवल वृत्र ही का मारनेवाला नहीं परन्तु वृत्र के मित्रों का भी संहारकर्त्ता है। वृत्र के मित्र कैान थे। आश्चर्य्य की बात है कि ऋग्वेद में वृत्र के मित्रों के जो नाम मिलते हैं वे ही नाम असुरिया देश के कीलाकार लेखों में भी दृष्टि होते हैं जिस से कोई कोई विद्वान सिद्धान्त करते हैं कि वैदिक ऋषियों के पितृगण असुरिया देश के निकट ही बास करते होंगे नहीं तो असुरीय भाषा के नाम वेद में कैसे आ गये। हजारहा बर्षों तक असुरिया देश के प्रधान प्रधाननगर माटी के नीचे दबे रहे। कुछ बरस हुए उन में से कोई कोई स्थान खोदकर निकाले गये हैं। असुरीय लोग मिट्टी की ईंटों वा दीवारों पर कीलाकार अक्षरों में अपने लेखों को लिखते थे। यूरोपीय विद्वानों ने बहुचेष्टा और परिश्रम से उन का अर्थ खोज लिया है। वृत्र के मित्रों के असुरीय नाम ऋग्वेद के

सातवें मंडल के अठारहवें सूक्त में देखने में आते हैं। जैसे वैदिक तुर्वश नाम राजा का नाम असुरीय लेखों के तुबुसु नाम राजा के नाम से मिलता है। वैदिक अनु और अज असुरीय अनु और अज। वैदिक कबष असुरीय भाषा के कबसु नगर के नाम के अनुरूप है। वैदिक देवक असुरीय देबगु। वैदिक शम्बर के पिता कुलितर के नाम के साथ असुरीय राजा किलितेरु का नाम मिलता है। वैदिक यतु एक जाति का नाम है असुरीय यतु एक देश का नाम है। देश बासियों को देश का नाम प्राप्त होना कुछ असंभव नहीं है वैदिक यमुना नाम पुरुष का नाम असुरीय लेखोक्त यमनि नाम हित्ती राजा के नाम से मिलता है इत्यादि। (देखो Arian Witness, pp. 73, 74.)

इन बातों से कोई यह न समझे कि असुरिया के कीलाकार लेखों से जिन के नाम यहां पर उद्धृत किये गये ये ही वृत्र के मित्र थे। जैसे एक ही नाम किसी देश में भिन्न भिन्न समय में भिन्न भिन्न लोगों को मिलता जाता है उसी प्रकार हम केवल यह कहना चाहते हैं कि वेद में वृत्रासुर के मित्रों के जो नाम दृष्टि होते हैं वे असुरिया देश के नाम हैं। क्योंकि उस देश के प्राचीन लेखों से प्रगट होता है कि वहां पर ऐसे ऐसे नाम हुआ करते थे। अब इस में यह भेद है कि वैदिक ऋषियों के पितृगण यद्यपि असुरिया देश के निकटवर्त्ती स्थानों में नहीं बसते थे तो वे विशेष नाम जो असुरीय भाषा में पाये जाते हैं वेद में उन के शत्रुओं के लिये किस प्रकार से आ गये ?

इस के उत्तर में एक और विचार हो सकता है कि वैदिक आर्य्यों के भारतवर्ष में प्रवेश करने से पहिले इस देश में एक ऐसी जाति रहती थी जो किसी समय असुरिया देश से इस देश में आई होगी। उस जाति को और उन से पहिले के प्राचीन निवासियों को हटा कर हिन्दु आर्य्यों ने इस देश में वासस्थापन किया। यदि यह सिद्धान्त सच हो तो इस से भी हमारे पुरुखों को इस देश में विदेशी होना ही प्रमाण होता है।

सरमा और बल की कहानी—ऋग्वेद में एक कहानी है कि बल नामक एक असुर था। बलासुर के पणिस् नाम कर्म्मकरों ने इन्द्र के गुरु बृहस्पति की गायों को चुराकर एक गुफा में छिपा रखा था। उन गायों को ढूंढने के लिये देवताओं ने सरमा नामी स्वर्गीया कुतिया को भेज दिया। सरमा कुतिया एक बड़ी नदी पार होके बलासुर के नगर में पहुंच गई और गायों को देख लिया। पीछे पणिस् नाम कर्म्मकरों के साथ सरमा की बातचीत हुई जो ऋग्वेद के दसवें मंडल के एक सौ आठवें सूक्त में लिखित है। इस के पश्चात् इन्द्र जाकर गायों को निकाल लाया।

प्रसिद्ध वैदिक विद्वान मेक्स मूलर साहिब का विचार है कि वैदिक सरमा की कहानी से प्रसिद्ध यूनानी कवि होमर की ट्रोयास युद्ध कहानी रची गई। ऋग्वेद की सरमा स्पार्टा की सुन्दरी राणी हेलेना है। वैदिक पणिस् ट्रोयास राज-पुत्र पारिस है। वैदिक पणिस् का गढ़ विलु यूनानी में इलियम है। वैदिक वृसय यूनानी में वृसेस है इत्यादि। साहिब की समझ में सरमा की

कहानी एक प्राकृतिक रूपक है। देवताओं की गायें सूर्य्य किरण वा सूर्य्य किरण से रंगे हुए मेघ हैं। अंधियारा उन्हें चुरा ले गया था। सरमा ऊषा है। कुतिया जिस प्रकार किसी बस्तु का गंध पाकर उस का पीछा करती है ऊषा उसी प्रकार इधर उधर दौड़ती फिरती है। सरमा वा ऊषा जब संदेश लाती तो उंजियाले का देवता इन्द्र प्रकाश होके अंधियारे के साथ युद्ध करता और अंधियारे के गुप्त स्थानों से देवताओं की गायों को अर्थात् सूर्य्य किरण वा रंगे हुए मेघों को निकाल लाता है*। यद्यपि इस कहानी को केवल प्राकृतिक रूपक ही कहा जाय और इसी रूपक से त्रोयास-युद्ध की कहानी की उत्पत्ति मान लिई जाय तथापि कहना पड़ेगा कि हिन्दु और यूनानी दोनों जातियों के पुरखों के परस्पर पृथक होने से पहिले यह रूपक उन के पैतृक निवास में प्रचलित था।

जिस प्रकार वृत्र की कहानी के विषय में बर्णन किया गया उसी प्रकार इस कहानी के विषय में भी कहा जा सकता है कि इस की भी कोई न कोई ऐतिहासिक नेव का होना असंभव नहीं है। असुरिया के कीलाकार लेखों में बेल नाम एक पुरुष का नाम प्राप्त होता है जिसे यूनानी ग्रन्थकर्त्ताओं ने बेलस कहा है। फुरात नदी के तट पर किसी ऊंचे स्थान में बेल वा बेलस का एक गढ़ था जिस को मूल असुरीय भाषा में बाबेल

---

* "The siege of Troy is but a repetition of the daily siege of the East, by the solar powers that every evening are robbed of their brightest treasures in the West."—Max Mullers *Science of Language.*

ओासिंपा और कभी कभी बाबिलु कहते थे। बेल का फिनेउस नामक एक पुत्र भी था। अब इन बातों से ऋग्वेद के बलासुर की कहानी का भेद बहुत कुछ जान पड़ता है। वैदिक बल असुरीय बेल वैदिक पणिस् असुरीय फिनेउस। बेल का नगर बाबेल वा बाबुल फुरात नदी के तट पर अवास्थित था। वैदिक बलासुर के नगर में पहुंचने के लिये सरमा को एक बड़ी नदी पार होना पड़ा। क्या यह वैदिक बड़ी नदी फुरात नदी नहीं हो सकती है। फिर बेल का नगर किलादार था। वैदिक पणिस् का किला विलु है जिसे कोई कोई विद्वान इलियम कहते हैं। क्या बलासुर का गढ़ बेल राजा के गढ़ बाबुल से मिलता नहीं। अब रही सरमा कुतिया। कोई कोई विद्वानों ने तो उस को स्पार्टा की सुन्दरी राणी हेलेना समझा है। वैदिक ऋषियों ने यद्यपि उस को ऐसे रूप लावण्य और राज पाट की अधिश्वरी नहीं ठहराया तथापि उस को देवी होने की मर्य्यादा तो दे ही दिई। हिन्दु जाति की सब से पवित्र पुस्तक ऋग्वेद में ऐसे एक अपवित्र जानवर का देव मर्य्यादा प्राप्त होना एक भेद है। जन्द आवस्ता इस भेद को प्रगट कर हमारा संदेह दूर करता है। आवस्तान तर्गत वन्दिदाद का तेरहवां फर्गर्द केवल कुत्तों की स्तुति से पूर्ण है। सो जिस समय देव-कुतिया सरमा देवताओं की गायों को ढूंढने के लिये भेजी गई थी उस समय हमारे पूर्व पुरुष श्वान-पूजक देश के अधिवासी होंगे। यों सरमा और बलासुर की कहानी हमारे पुरुखों को फुरात नदी के तट पर पहुंचा

देती है। (देखो इस विषय का विस्तृत वर्णना (Arian Witness P. 55-68.)।

शंडा और जिन्दु—ऋग्वेद म० २ सू० ३० ऋ० ८ में यों लिखा है:—

सरस्वतित्वमस्मां अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून्।
त्यंचिच्छर्धंतं तविषीयमाणमिन्द्रो हंति वृषभं शंडिकानाम्॥

अर्थ—हे सरस्वति, हमारी रक्षा कर। मरुत्गण के साथ मिलके दृढ़तापूर्वक शत्रुओंको जय कर। इन्द्र ने स्पर्धा करनेवाले बलवान शंडिकों के प्रधान को हत किया था।

इस ऋचा में जो शंडिकों का प्रसंग है यह कौन हैं बाबू रमेशचन्द्रदत्त लिखते हैं कि यह आर्य्यों की कोई शत्रु जाति होगी। सायनाचार्य्य लिखते हैं कि शंडामर्क असुरों के दो पुरोहित थे। सो वैदिक शंडिक से शंडामर्क के अनुगामी अर्थात असुर समझना चाहिये। अब यह असुर-गुरु शंडा कौन था। असुरिया देश के एक देवता का नाम बाबुली बोली में जिन्दु है जिन्दु को वे बड़ा बलवान समझते थे और उस की मूर्त्ति आधे बैल और आधे मनुष्य की मानते थे (See Arian Witness, P. 75.) संस्कृत में शंड का शाब्दिक अर्थ बैल है। सो वैदिक शंडिक युद्ध भी हमारे पितृगण को असुरिया की ओर बास करते दिखाता है।

ढूंढढांढ़ का फल—१. ऋग्वेद के आरंभ में जो पूर्व ऋषियों का प्रसंग है वे मध्य एशियास्थ अग्नि पूजक ऋषि थे। सो ऋषियों का स्वदेश मध्य एशिया में था।

२. स्वश्व वा कश्यप के प्रसंग से जान पड़ता है कि

ऋषियों का स्वदेश कास्पियान सागर के तट पर और मिदिया देश में भी रहा ।

३. वृत्र-वध-वृत्तान्त यदि रूपक वर्णन हो तो यह रूपक हिन्दु और पार्सियों के पुरुखों के एकत्र बास समय उन के पैतृक निवास में प्रचलित था और यह पैतृक निवास इरान देश के इस ओर तो न था। क्योंकि इरानियों के इधर से उधर जाने का कोई प्रमाण नहीं ।

४. वृत्र की कहानी की यदि कोई ऐतिहासिक नेव मानी जाय और उस की असुर पदवी असुरिया देश निवासी होने सी हुई हो तो ऋषियों का स्वदेश असुरिया राज्य से दूर न था और संभवतः बाबुल के निकटवर्त्ती स्थानों में अवस्थित था ।

५. वृत्र के मित्रों के नामों से यह सिद्धान्त विशेष दृढ़ होता है ।

६. सरमा और बलासुर की कहानी से और भी स्पष्ट होता है कि ऋषियों का स्वदेश बाबुल नगर की निम्न-वाहिनी फुरात नदी से बहुत दूर न था ।

७. शंडिक-युद्ध से भी सिद्ध होता है कि ऋषियों का स्वदेश असुरिया और बाबुल की सीमा के सन्निकट था ।

जब वेद इस विषय में इस प्रकार स्पष्ट साक्षी देता है तो वह हिन्दु जो इस का अस्वीकार करता है अपने वेद ही का अस्वीकार करता है ।

संपूर्णम् ।

PRINTED BY E. CALEB, B. A. AT THE ALLAHABAD MISSION PRESS.